Chap-3

: अध्याय--तीन :

: वेश्या-जीवन पर आधारित हिन्दी उपन्यास ≬।≬

: अध्याय - तीन :

: वेश्या-जीवन पर आधारित हिन्दी उपन्यास :

प्रास्ताविक :

हिन्दी साहित्य के इतिहास में आधुनिक काल का सविशेष महत्व इसलिए है कि इस काल में अनेक नयी गद्य-विधाओं का उद्भव और विकास हुआ है । उपन्यास उन विधाओं में एक है । हिन्दी के लिए यह विधा नितान्त नवीन है । उपन्यास को अंग्रेजी में "नोवेल" कहते हैं, और "नोवेल" का एक अर्थ ही "नवीन" होता है । यूरोप जहां उसका उद्भव हुआ, वहां भी वह बहुत ज्यादा पुराना नहीं है । इसलिए तो इस विधा को वहां "नावेल" नाम दिया गया था । यूरोप में जो उत्क्रान्ति हुई उसके कारण वहां के सामाजिक ढांचे में काफी परिवर्तन हुए । लोगों की सोच में बदलाव आया । नवीन

विचार-प्रवाह व्यक्ति-मन और अतएव समाज-मन को आलोड़ित -विलोड़ित करने लगे । और इन नवीन विचारों की अभिव्यक्ति हेतु यह नया साहित्य-रूप सामने आया था । यूरोपीय पुनर्जागरण का उपन्यास के उद्भव के साथ गहरा संबंध है । उपन्यास का कुछ आभास हमें इटली के लेखक बोकाचियो की रचना " डेकामेरोन " में दृष्टिगत होता है । उसके बाद फ्रान्स के राबले और स्पेन के सर्वान्तीस आते हैं । अनेक विद्वान राबले और सर्वान्तीस को आधुनिक उपन्यास के जन्मदाताओं में अन्यतम मानते हैं । राल्फ फोक्स महोदय ने कहा है -" Rabelais and Cervantes, the real founders of the novel. " ।

"गार्गान्तुआ एण्ड पान्तागुरुल " तथा " डान किहोटे " क्रमशः उनकी रचनाएं हैं । पुनर्जागरण की साहित्यिक संतान होने के नाते उपन्यास ने उसकी अनेक प्रवृत्तियों को अपने में समाहित की है । इस संदर्भ में डा. भारतभूषण अग्रवाल लिखते हैं -" पुनर्जागरण यूरोप की वह महान संक्रान्ति थी जिसने मध्ययुगीन जड़ता , रूढ़ि और अन्धविश्वासों को , गाथिक वास्तु-विद्या को , संकीर्ण दृष्टिकोण को , ह्रासोन्मुखी अर्थ व्यवस्था को और सामन्तीय अराष्ट्रीयता को बहा दिया और उसके स्थान पर सन्देहवाद , व्यक्तिवाद , पदार्थवाद , मुक्ति , आत्माभिव्यक्ति के साथ-साथ एक गतिशील आर्थिक व्यवस्था और राष्ट्रीयता को प्रतिष्ठित किया । स्वभावतः ही इस संक्रान्ति ने धीरे-धीरे एक ऐसे उद्वेलन का रूप लिया जिसमें सब प्रकार की गतानुगतिकता को तिलांजलि दी जाने लगी , समाज में एक नयी स्फूर्ति और सक्रियता प्रकट हुई जिसके फलस्वरूप नये-नये देशों की खोज की जाने लगी , धार्मिक मूढ़ता के स्थान पर वैज्ञानिकता का अनुशीलन प्रारंभ हुआ , व्यापार और उद्योगों को नयी गति मिली , नये नगर-राज्य स्थापित हुए , मठों और गिरजों के चंगुल से निकलकर शिक्षा नयी सरणियों में प्रवाहित होने लगी , मुद्रणकला के आविष्कार और प्रसार ने एक ऐसा शिक्षित-अर्द्धशिक्षित पाठक वर्ग उत्पन्न किया जो श्रेष्ठ साहित्य का रस लेने में असमर्थ होते हुए भी पठन-व्यसनी था,

देशभक्त का जन्म हुआ और मानव अपनी इयत्ता के अभिज्ञान की ओर अग्रसर हुआ । "उपन्यास का उद्भव इसकी पृष्ठभूमि में हुआ है । और हमारे यहां नवजागरण के बाद लगभग वैसी ही स्थितियां जब निर्मित हुईं तो यह साहित्य-विधा अंग्रेजी के माध्यम से हमारे यहां भी आ पहुंची । इसका सीधा सरोकार मनुष्य और समाज से है । नये विचारों को प्रवाहित करने में इसका बड़ा ही योगदान है । ~~xxxxxxxxx~~ उपन्यासकार अपने पात्र एक वा दूसरी तरह से अपने पात्र अपने आसपास के परिवेश से ही प्राप्त करता है । वह चाहे या न चाहे पर समाजावृत मानवसमुदाय, उसकी लाक्षणिकताएं उपन्यासकार को प्रभावित करती ही रहती हैं । इसी समाज से ही उसे अपनी कृति के लिए पात्र मिलते हैं । कदाचित इसीलिए ई. एम. फारस्टर सत्य ही कहते हैं —" Human beings have their great chance in the novel. they say to the Novelists 'Recreate us if you like, but we must come in.

"3 और इसलिए हमारे यहां जब उपन्यास आया तो नवजागरण की वैचारिक पृष्ठभूमि के कारण अनेक सामाजिक मुद्दे और सरोकार थे । इन मुद्दों को पूर्व-प्रेमचंदकाल तथा प्रेमचंदकाल के लेखकों ने हाथोंहाथ लिया । फलतः समस्यामूलक सामाजिक उपन्यास हमारे सामने आये । ऊपर निर्दिष्ट किया गया है कि इस नयी वैचारिक व बौद्धिक क्रान्ति के कारण समाज के प्रत्येक मुद्दे की ओर देखने की दृष्टि मध्यकालीन, संकीर्ण, रूढ़िग्रस्त न रहकर विस्तृत, व्यापक और वैज्ञानिक हो गई । अन्यथा कोई कल्पना भी कैसे कर सकता है कि एक साहित्य का विद्यार्थी वेश्या-समस्या को लेकर शोध-अनुसंधान का कार्य करे । वेश्या-समाज को जहां समाज का कोढ़ समझा जाता था, वहां आज उसके साथ समाजशास्त्रीय व मानवीय दृष्टि जुड़ गई है । यही कारण है कि पूर्व-प्रेमचंदकाल से लेकर अद्यावधि अनेक उपन्यासकारों ने वेश्या-जीवन का चित्रण किया है । जैसे-जैसे दृष्टि विकसित हो रही है, उपन्यासकारों का दृष्टिकोण भी बदल रहा है । प्रस्तुत अध्याय में हमारा उपक्रम

वेश्या-जीवन तथा वेश्या-समस्याओं पर आधारित कतिपय उपन्यासों को विश्लेषित करने का है ।

§1§ परीक्षा गुरु :

"परीक्षागुरु" को हिन्दी के कई ~~अस्लोचक~~ आलोचक हिन्दी का प्रथम उपन्यास मानते हैं । उसका प्रकाशन सन् 1882 में हुआ था । उसके लेखक लाला श्रीनिवासदास एक बहुपठित व्यक्ति थे । स्वयं लेखक के शब्दों में यह " अपनी भाषा में नई चाल की पुस्तक है । " [4] स्वयं लेखक यह "नई चाल" क्या है , उसे समझाते भी हैं । यथा —" अपनी भाषा में अब तक वार्ता रूपी जो पुस्तकें लिखी गई हैं उनमें अक्सर नायक-नायिका वगैरह का हाल ठेठ से सिलसिलेवार § यथाक्रम § लिखा गया है , जैसे कोई राजा , बादशाह , सेठ-साहूकार का लड़का था , उसके मन में इससे यह रूचि हुई है और उसका यह परिणाम निकला , ऐसा सिल-सिला कुछ मालूम नहीं होता । लाला मदनमोहन एक अंग्रेजी सौदागर की दूकान में असबाब देख रहे हैं । लाला ब्रजकिशोर , मुंशी चुन्नीलाल और मास्टर ~~शम~~ शम्भूदयाल उनके साथ हैं । इनमें मदनमोहन कौन , ब्रज-किशोर कौन , चुन्नीलाल कौन और शम्भूदयाल कौन हैं ? इनका स्व-भाव कैसा है ? परस्पर सम्बन्ध कैसा है ? हरेक की हालत क्या है ? यहाँ इस समय किसलिए इकट्ठे हुए हैं ? ये बातें पहले से कुछ भी नहीं बताई गई । हां , पढ़ने वाले धैर्य से सब पुस्तक पढ़ लेंगे , तो अपने-अपने मौके पर सब भेद खुलता चला जायेगा और आदि से अन्त तक सब मेल मिल जायेगा ।" [5] इस कथन से यह प्रकट होता है कि लेखक इस नाटकीय आरंभ को ही " नई चाल" मानते हैं । इस तकनीक की नवीनता की दृष्टि से देखें तो निश्चय ही "परीक्षागुरु" हिन्दी का प्रथम अंग्रेजी ढंग का उपन्यास ठहरता है । इस उपन्यास में दिल्ली के एक कल्पित रईस लाला मदनमोहन का स्वाभाविक चित्र अंकित किया गया है । लाला मदनमोहन रईस आदमी हैं । इसलिए ~~लाला ब्रजकिशोर~~ , मुंशी चुन्नी-लाल , मास्टर शम्भूदयाल आदि लोग उनको हमेशा घेरे रहते हैं । ये लोग झूठे , मक्कार , धोखेबाज और खुशामदखोर हैं । रात-दिन लाला

मदनमोहन की चापलूसी में आकण्ठ डूबे रहते हैं । इस प्रकार इसमें दिल्ली के एक बिगड़े रईस के विनिपात की कथा है । मदनमोहन ह्रासशील रईसी का प्रतिनिधि है । अर्थलोलुप और स्वार्थी चाटुकार मित्रों की चापलूसी में पड़कर मिथ्या प्रतिष्ठा , झूठी अंग्रेजीयत और बड़प्पन के प्रदर्शन में वह अपना सबकुछ गंवा बैठता है । अंग्रेजियत और नयी हवा से प्रभावित होकर वह अंग्रेजी और नयी चाल की चीज वस्तुओं के पीछे अपनी दौलत लुटा देते हैं । विलायती प्रसाधन और सामग्रियों के दुने-चौगुने मूल्य उसके मित्र उससे वसूलते हैं । अंसारी का लड़का हरगोविन्द बारह रूपये की लखनवी टोपियां उनको अठारह रूपये में दे जाता है और ऊपर से शाबाशी बटोरता है सो अलग । हकीम अहमद हुसैन कल्पित अत्तर की झूठी कहानियां सुनाकर एक चमत्कारी इत्र (9) की शीशी के पचीस रूपये ऐंठ लेता है । मिस्टर ब्राइट , मिस्टर रसल और घोड़ों के व्यापारी आगाजान से मिलकर चुन्नीलाल और शम्भूदयाल दलाली और कमीशन में हजारों रूपयों का चुना लगाते हैं । इस प्रकार मदनमोहन की यह चाटुकार मण्डली उसे तारीफ और झूठी प्रशंसा के जाल में ~~कुछ~~ फंसाकर उसे दिवालिया बना देते हैं । दुनिया का कोई ऐसा ऐब न होगा जिसकी लत ये लोग लाला को नहीं लगाते । इसी चक्कर में वे तवायफों और वेश्याओं के कोठों पर जाने लगते हैं । पतिव्रता व पतिप्राणा पत्नी सुशीला की अवहेलना और उपेक्षा कर वे वेश्याओं के पास जाने में अपनी शान समझते हैं । शुरू-शुरू में वेश्याओं और तवायफों के पास जाने में उनको हिचकिचाहट होती थी , लेकिन उनके चाटुकार मित्र उनके मन में यह भूसा भर देते हैं कि वेश्याओं और तवायफों के पास तो रईस और अमीर लोग जाते हैं । वह रईस ही क्या जो वेश्याओं के कोठों पर न जाता हो । इस प्रकार वेश्या और विलायती शराब लाला के मुंह लग जाती है । उनके टुक्कड़खोर मित्र यह सब इसलिए करते हैं कि इस बहाने उनको भी ऐश करने को मिलती है और दूसरे ये विषय ऐसे हैं कि उनमें चाहे जितने रूपये धीरे-

धीरे ऐंठे जा सकते हैं । बिमल मित्र के उपन्यास " साहिब बीबी गुलाम" में बहुत बाद में यही परिदृश्य हमें दृष्टिगोचर होता है ।

चुन्नीलाल , शम्भूदयाल और हकीम अहमद हुसैनx हुसैन मह्बरश नम्बरी रण्डीबाज और बुर्दाफरोश किस्म के लोग हैं । वे अपनी पसंदीदा वेश्याओं और रण्डियों के पास मदनमोहन को ले जाना चाहते हैं और उनसे उनका कमीशन बंधा हुआ है । वे वेश्याएं भी काफी प्रशिक्षित हैं , ग्राहक से पैसे निकलवाने के संदर्भ में । वात्स्यायन ने जिस वेश्या-चरित्र की बात कही है , किस प्रकार ग्राहक को यह बताना कि उसके बिना तो उसे चैन नहीं पड़ता है , एक भी दिन अगर न देखें तो कैसे रात की नींद हराम हो जाती है , कैसे करवटें बदल-बदल कर उसने रात बितायी है आदि-आदि । मदनमोहन उनकी इन नाटकीय अदाओं और बातों को सच मान बैठते हैं और इन्हीं बातों पर इतराते हुए घर की लक्ष्मी को ठुकराकर बाजार की रण्डियों पर लक्ष्मी लुटाते हैं । उसमें उनके उक्त चाटुकार मित्र दोनों हाथों से धन बटोरते हैं ।

उनके मित्रों में केवल ब्रजकिशोर एक सज्जन , न्याय-विवेक-संपन्न व्यक्ति है । वह लाला के सच्चे मित्र हैं और उनको इस दलदल से निकालने की बहुतेरी कोशिश करते हैं , परन्तु उनकी सच्ची बातों का लाला पर कोई असर नहीं होता । इस प्रकार घर और पतिव्रता पत्नी सुशीला के प्रति विकर्षण और विलास , वेश्या और भौतिकता के प्रति आकर्षण बढ़ता ही जाता है । इन स्वार्थी रण्डीबाज मित्रों की सोहबत में लाला मदनमोहन ऋणग्रस्त होते जाते हैं , और नौबत यहां तक आ जाती है कि ऋण न चुका सकने के कारण उनको जेल की हवा भी खानी पड़ती है । परन्तु सुचरित्रा पत्नी के त्याग और सच्चे मित्र ब्रज-किशोर के सदुद्योग से वह मुक्त हो जाता है । जब लाला के पास धन-दौलत नहीं रहती तब चाटुकार मित्र तो प्रवासी पंछियों की तरह छू हो जाते हैं । केवल ब्रजकिशोर और पत्नी सुशीला उसकी सहायता के लिए आते हैं । जो बात ब्रजकिशोर और सुशीला लाख यत्न करके भी नहीं समझा सकते वह बात जब विपत्ति आती है तो

लाला समझ जाते हैं । इस प्रकार विपत्ति ही मनुष्य का सच्चा गुरु है , इस तथ्य को प्रस्तुत उपन्यास में उजागर किया गया है और इसलिए उपन्यास का शीर्षक - " परीक्षागुरु " — सार्थक और सटीक है । उपन्यास के अन्त-भाग में पश्चाताप की अग्नि में जलते हुए लाला अपनी पत्नी सुशीला को कहते हैं —" मुझको इतना दुख उन कृतघ्न मित्रों की शत्रुता से नहीं होता जितना तेरी लायकी और अधीनता से होता है ।"[6]

इस प्रकार यहां सुशीला को सीता-सावित्री के रूप में एक आदर्श और सच्ची भारतीय नारी के रूप में चित्रित किया है । किन्तु जहां तक वेश्या-समस्या का प्रश्न है , वेश्याओं को वह घृणित, जघन्य तिरस्कृत व परंपरित रूपमें ही ही चित्रित करते हैं । मधु कांकरिया कृत उपन्यास " सलाम आखिरी " में एक स्थान पर कहा गया है —" वे §वेश्याएं § प्रेम नहीं कर सकती हैं , क्योंकि उनका उद्देश्य सिर्फ प्रेम को भुनाना होता है । वे सिर्फ प्रेम का नाटक करती हैं । जाने कितनी लोकोक्तियां , शायरियां , लोककथाएं वेश्याओं की संवेदनहीनता , बेवफाई , क्रूरता और मक्कारी से अटी पड़ी हैं । कुछ दिन पूर्व ही उसने § उपन्यास की नायिका सुकीर्ति के मित्र ने § एक शेर पढ़ा था जिसमें क्रूर सियासत की तुलना तवायफ के दुपट्टे से की गई थी - " वह सियासत की तवायफ का दुपट्टा है / जो किसीके आंसुओं से तर नहीं होता । " उसका मित्र विजय कहता था कि वेश्याएं उन मादा मकड़ी की तरह होती हैं जो सम्भोग के बाद नर मकड़ी की गर्दन मरोड़कर हत्या कर देती हैं ।"[7] लाला श्रीनिवासदास ने भी वेश्या के इसी रूप को यहां चित्रित किया है ।

§2§ आदर्श हिन्दू :

"आदर्श हिन्दू" मेहता लज्जाराम शर्मा का उपन्यास है । मेहता लज्जाराम शर्मा भी लाला श्रीनिवासदास की भांति पूर्व-प्रेमचंद काल के लेखक हैं । पूर्व-प्रेमचन्दकाल में जो सामाजिक उपन्यासकार प्राप्त होते हैं उनको हम दो वर्गों में रख सकते हैं — नवसुधारवादी,

और पुरातनपंथी या सनातन हिन्दू धर्मी । मेहता लज्जाराम शर्मा इस द्वितीय श्रेणी में आते हैं । उनकी यह विचारधारा उनके इस उपन्यास में भी×xxxxx प्रतिबिम्बित होती है । एक स्थान पर वे कहते हैं — " जो विधवा-विवाह अथवा तलाक का प्रचार करना चाहते हैं वे दम्पति के प्रेम पर , जन्म-जन्मांतर के साथ पर , पवित्र सतीत्व पर और यों हिन्दू धर्म पर वज्र मारना चाहते हैं । यह विवाह नहीं मेरी समझ में तो व्यभिचार है ।" [8] काश मेहताजी समझते कि विधवा-विवाह-निषेध से ही समाज में अप्रकट या प्रच्छन्न वेश्याओं का जन्म होता है ।

वैसे "आदर्श हिन्दू " पंडित प्रियनाथ और उनकी पत्नी प्रियंवदाजी की कथा है । प्रियनाथ और प्रियंवदाजी के दाम्पत्य-जीवन को लेखक ने आदर्श-रूप में स्थापित किया है । मेहताजी अपने उपन्यासों में चरित्र-चित्रण के लिए विसदृशता (Contrast) की पद्धति का प्रयोग करते हैं । एक आदर्श दम्पति के सामने एक अनादर्श युग्म को प्रस्तुत करके अपने कथन को अधिक तर्कसंगत व युक्तियुक्त बता-×x×x ने में मेहताजी बड़े माहिर हैं ।"स्वतंत्र रमा परतंत्र लक्ष्मी " में भी उन्होंने शिक्षित रमा और अशिक्षित लक्ष्मी में लक्ष्मी के दाम्पत्य-जीवन को उत्कृष्ट बताया है । प्रस्तुत उपन्यास में कान्तानाथ की पत्नी में विकृत भावनाओं का चित्रण हुआ है । कान्तानाथ प्रियनाथ का भाई है । पंडित प्रियनाथ को हिन्दू धर्म में प्रगाढ़ आस्था है । उनकी पत्नी पियंवदा आदर्श हिन्दू नारी है । प्रियंवदा के प्रभाव के कारण उपन्यास के अन्त में कान्तानाथ की पत्नी में भी सुधार हो जाता है । लेखक ने नारी का प्रधान गुण यही माना है कि पत्नी पति की अनुचरी बनकर रहे । वह पति को ही अपना सर्वस्व समझे और पति चाहे कैसा भी हो पत्नी के लिए उसके सिवाय कोई गति नहीं है । लेखक के मता-नुसार प्रियंवदा इसलिए सुखी जीवन व्यतीत करती है कि उसे बचपन से ही ऐसी शिक्षा दी गई है कि पत्नी पति की दासी है और पतिसेवा में ही उसकी मुक्ति है । उसकी तुलना में कान्तानाथ की पत्नी xxx सुखदा , वस्तुतः दुखदा साबित होती है क्योंकि पति में उसकी वैसी

आस्था नहीं है । वैसे उपन्यास के अन्त में तो वह भी सुधर जाती है क्योंकि लेखक का वही अभिष्ट है । लेखक ने इस उपन्यास में कथा के ब्याज से विधवा-विवाह का विरोध तथा वेश्या-समस्या पर भी अपनी विचारधारा के अनुसार विचार किया है । लेखक वेश्यावृत्ति के उन्मूलन के स्थान पर , उसके विपरीत शेष समाज को स्वस्थ ~~रखने~~ रखने के लिए वेश्याओं की उपादेयता पर जोर देते हैं । उनका अभि-मत है कि समाज को पतन से बचाने के लिए वेश्याओं का होना नितांत आवश्यक है । प्रस्तुत उपन्यास में वेश्याओं का होना दो कारणों से आवश्यक माना गया है -" /1/ वे अवश्य अपना आपा बिगाड़ रही है , अपना सर्वस्व नष्ट कर रही हैं किन्तु वे हिन्दू नारियों के सतीत्व की रक्षा करती हैं । /2/ जब गाने-बजाने और नाचने का पेशा करने वाली हमारी सोसायटी में न रहेंगी तब कुलवधुएं इस काम को ग्रहण करेंगी । .... यदि आप रंडी का नाच बन्द कर देंगे तो एक दिन आपको बहू-बेटियां अवश्य नचानी पड़ेंगी ।" [9] मेहताजी का यह तर्क उस बौद्धिक के जैसा है । एक बौद्धिक से जब पूछा गया कि क्या "वेश्या उन्मूलन संभव है ? उसने जवाब दिया , हां संभव है , पर वह उसी प्रकार का होगा जिस प्रकार कि " सोसायटी विदाउट ए गटर । " [10] इस भावशून्यता एवं भावनात्मक क्षरण के जवाब में यही कहा जा सकता है कि जनाब कभी यही तर्क दास-प्रथा के लिए भी दिए जाते थे ।

मेहताजी प्राचीन भारतीय विश्वास के अनुसार पति-पत्नी के संबंध को जन्म-जन्मांतर का संबंध मानते हैं , इसलिए वह अपने उपन्यासों में विधवा के पुनर्विवाह को स्वीकृति नहीं देते हैं और पति की मृत्यु पर उसे सादा जीवन व्यतीत करने की शिक्षा देते हैं । उनका मत है कि विधवा-विवाह करने से ~~हिन्दू धर्म पर वज्रपात हो जायेगा~~ सतीत्व की भावना और हिन्दू धर्म पर वज्राघात हो जायेगा । हालांकि विधवाओं की आर्थिक दुरावस्था की चिन्ता वह अपने ढंग से करते हैं । प्रस्तुत उपन्यास में प्रियंवदाजी ~~विधवाओं को आर्थिक~~ विधवाओं को आर्थिक कठिनाइयों से मुक्त करने हेतु एक सुझाव उपस्थित करती

है —" यदि उनका उपकार करना हो तो उनके पालन-पोषण और चरित्र-रक्षा के लिए विधवाश्रम खोलिये ।" ¹¹ परंतु हमारे यहां विधवाओं के साथ क्या व्यवहार होता है उसका बेबाक और यथार्थ चित्रण बाद में नागार्जुन ने किया है "रतिनाथ की चाची" और "उग्रतारा" जैसे उपन्यासों में । वस्तुत उन विधवाओं में और वेश्याओं में कई बार कोई अंतर नहीं रह जाता है । कई बार ऐसी विधवाएं ही वेश्याएं हो जाती हैं जिसको हम पूर्ववर्ती पृष्ठों में देख चुके हैं । मेहताजी का जन्म-जन्मांतर में उसी पति को पाने का जो विश्वास है , वह तो तभी बना रह सकता है जब पति भी पत्नी की मृत्यु के उपरान्त विधुर-जीवन व्यतीत करे । यदि पति दूसरा विवाह कर लेता है तो दूसरे जन्म में क्या वह दो-दो पत्नियों का स्वामी बनेगा ? एक बार यदि पुनर्जन्म की बात को स्वीकार कर भी लें तो यह जरूरी तो नहीं कि दुबारा मनुष्य योनि ही मिले , यह भी जरूरी नहीं कि पुरुष को पुरुष योनि ही मिले । दूसरे जन्म में उसी पति को पाने वाली जो बात है , उसकी अच्छी खिल्ली यशपाल ने "करवा का व्रत " कहानी में उड़ायी है । जो भी हो , इस उपन्यास से इतना फलित होता है कि मेहताजी वेश्या-उन्मूलन में नहीं मानते , बल्कि वह तो वेश्या-समाज का अस्तित्व बनाए रखना चाहते हैं , ताकि शेष स्त्री-समाज का सतीत्व व पवित्रता बनी रहे ।

§3§ स्वर्गीय कुसुम :

"स्वर्गीय कुसुम " किशोरीलाल गोस्वामी कृत देवदासी-प्रथा पर आधारित उपन्यास है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उनके संदर्भ में लिखा है —" इनके उपन्यासों में समाज के कुछ सजीव चित्र , वासनाओं के रूप रंग , चित्ताकर्षक वर्णन और थोड़ा-बहुत चरित्र-चित्रण भी अवश्य पाया जाता है । गोस्वामीजी संस्कृत के अच्छे जानकार , साहित्य के मर्मज्ञ तथा हिन्दी के पुराने कवि और लेखक थे । संवत् 1955 में उन्होंने "उपन्यास" मासिक पत्र निकाला

और द्वितीय उत्थानकाल के भीतर 65 छोटे-बड़े उपन्यास लिखकर प्रकाशित किए । अतः साहित्य की दृष्टि से उन्हें हिन्दी का पहला उपन्यासकार कहना चाहिए ।" [12] तो डा. रामचन्द्र तिवारी पं. किशोरीलाल गोस्वामीजी के संदर्भ में लिखते हैं -- " विचारों से आप सनातनधर्मी और प्राचीनता-प्रेमी हैं । नव्य समाज के प्रति आप न्याय नहीं कर सके हैं । फिर भी तत्युगीन समाज की एक प्रतिनिधि मनोवृत्ति को समझने के लिए आपके उपन्यासों का अध्ययन आवश्यक है और प्रेमचन्द-पूर्व उपन्यासकारों में निर्विवाद रूप से आपका सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान है ।" [13]

पं. किशोरीलाल गोस्वामी के अधिक चर्चित उपन्यासों में "त्रिवेणी"या सौभाग्यवती " , "लीलावती या आदर्शसती" , "चपला या नव्य समाज " , " पुनर्जन्म या सौतिया डाह " , "माधवी-माधव या मदन-मोहिनी " आदि हैं ; किन्तु प्रस्तुत उपन्यास वेश्या-समस्या की दृष्टि से महत्वपूर्ण है । डा. चारूकान्त देसाई गोस्वामीजी के उपन्यासों के संदर्भ में कहते हैं -- " गोस्वामीजी के उपन्यास प्रायः नायिका-प्रधान है और उनमें प्रेम के विभिन्न रूपों का चित्रण मिलता है । श्रृंगार-वर्णन में उनकी प्रवृत्ति प्रायः रीतिकालीन ही रही है । एक ओर जहां उन्होंने सती-साध्वी स्त्रियों के आदर्श प्रेम का चित्रण किया है , वहां दूसरी ओर साली-बहनोई के अवैध प्रेम , विधवाओं के व्यभिचार , वेश्याओं के कुत्सित जीवन , देवदासियों की विलास-लीला आदि का भी सजीव आकलन किया है । "सु" और "कु" को साथ दिखाकर , "सु" के द्वारा अपने आदर्श की स्थापना करना उनका मुख्य प्रयोजन रहा है । परन्तु साथ ही साथ उनकी रीतिकालीन एन्द्रियता ने भी अपना रंग दिखाया है । कहीं-कहीं गोस्वाजी के प्रेम-चित्र उद्दाम-वासना का स्पन्दन लिए रहते हैं , उनमें प्रेम के स्थान पर विकट इन्द्रिय-लिप्सा की अभिव्यक्ति हुई है । प्रेम अपने आप में उदात्त विषय है किन्तु उसकी विकृति साहित्य को गर्हणीय बना देती है । कहीं-कहीं तो वे अत्यन्त निम्न कोटि की वासनात्मकता के प्रकाशन में उलझकर रह गये हैं । परंतु चरित्र-चित्रण और

और संवाद-योजना में अपने समकालीनों से वे आगे हैं ।" [14] वस्तुतः सनातन धर्म-प्रचारक, हिन्दू राष्ट्रवादी, रीतिकालीन रसिक कवि किशोरीलाल पर कलाकार किशोरीलाल जहां विजय पा गये हैं, वहां जीवन के कुछ मार्मिक, जीवन्त और प्रभावशाली चित्र हमें प्राप्त होते हैं ।

किशोरीलाल गोस्वामी के प्रस्तुत उपन्यास में उन्होंने वेश्या-समस्या के लिए देवदासी-प्रथा की बात की है । इस उपन्यास में वह देवदासी प्रथा की निन्दा करते हैं । प्रस्तुत उपन्यास की नायिका कुसुम राजा कर्णसिंह की पहली बेटी है । राजा कर्णसिंह को कोई संतान नथी, अतः वह मनौती रखते हैं कि यदि उनको संतान हुई तो अपनी पहली बेटी को भगवान जगन्नाथ के मंदिर में अर्पण कर देंगे । इसी वचन को निभाने के लिए राजा कर्णसिंह अपनी छः महीने की बेटी कुसुम को जगन्नाथ मंदिर के पंडा त्र्यंबक सौंप देते हैं । तत्कालीन धार्मिक परंपरा के अनुसार इस रीति से जो कन्याएं मंदिर में आती हैं, उन्हें जीवन-भर देवदासी बनकर रहना पड़ता है । इस प्रकार अपने परिवार और समाज से बिछुड़कर ये अबोध-निरीह बालिकाएं धर्म के ठेकेदारों के अधीन बड़ी नारकीय और गर्हणीय प्रकार की जिन्दगी बिताती हैं । उन्हें अनैतिक और कलंकित जीवन जीना पड़ता है । पण्डा-पुजारी आदि सभी उसका उपभोग करते हैं । इस प्रकार देवदासी होते हुए भी वह सर्वभोग्या - वेश्या के रूप में जीवन बिताने पर मजबूर हो जाती है । इसे हम एक प्रकार की "धार्मिक वेश्या " कह सकते हैं । पूर्ववर्ती पृष्ठों में "टाटा स्कूल आफ सोशल ~~xxx~~ साइन्सिस " की एक रिपोर्ट दी गई है, जिसमें कहा गया है कि बम्बई की वेश्याओं में से 30. 29 प्रतिशत वेश्याएं अपने पूर्व-जीवन में देवदासियां थीं । बम्बई के चकलों में अत्यधिक संख्या उन वेश्याओं की हैं जो कर्नाटक, खानदेश तथा राज्य के अन्य भागों में यन्नमा, दुर्गा और मंगेश के मंदिरों में अर्पित की गई थीं । [15]

इस प्रकार एक प्रकार की धर्मान्धता के वशीभूत होकर मां-बाप अपनी लाड़ली बेटी को मंदिर में सौंप देते हैं और फिर उसकी तरफ से अपना मुंह मोड़ लेते हैं । पलटकर एक बार भी नहीं देखते कि उनकी बेटी का क्या हश्र हुआ है , किन स्थितियों में वह जी रही है । "स्वर्गीय कुसुम" उपन्यास कीx में पण्डा त्र्यंबक कुसुम को चुन्नी नामक एक वेश्या के हाथों बेच देता है । इस प्रकार राजघराने में जन्मी कुसुम का पालन-पोषण एक बेx वेश्या के यहां होता है । वेश्या के यहां रहने के कारण उसका जीवन एक अभिशाप बन जाता है । यद्यपि कुसुम शरीर से पवित्र है , उसकी आत्मा उच्च और महान है , लेकिन यह समाज वेश्या के यहां पाली गयी लड़की को किसी भी शर्त पर कुलीन नहीं मान सकता , शीलवती नहीं मान सकता । कुसुम वसंत से प्रेम करती है , वह उसके साथ गांधर्व विवाह भी कर लेती है , किन्तु वसंत की सामाजिक प्रतिष्ठा को ध्यान में रखकर वह इस संबंध को गुप्त ही रखना चाहती है । बाद में वह वसंत को अपनी सगी बहिन गुलाब से विवाह करने के लिए भी बाध्य करती है और स्वयं संन्यासिनी की भांति जीवन-यापन करती है ।

एक स्थान पर कुसुम इस देवदासी प्रथाxसे प्रथा से अत्यन्त क्रुद्ध होकर अपनी मनोवेदना अपने पिता के सम्मुख व्यक्त करती है —" यह देवदासी प्रथा व्यभिचार और वेश्यावृत्ति की जड़ है और इसे किसी व्यभिचारी महात्मा ने चलाया है ।"[16] इसी प्रसंग में वह आगे और भी कटु सत्य प्रकट करती है —" गृहस्थाश्रम-त्यागियों को जब भोग-विलास के लिए स्त्रियों की आवश्यकता हुई और उनका काम केवल चेलियों से न चल सका , तथा परस्त्री गमन और वेश्या-समागम से निन्दा होने लग गई , तब उन्होंने इस घृणित देवदासी-प्रथा की चाल चलाकर और भोले धर्मप्राण लोगों को ठगकर अपना काम चलाने का उपाय ढूंढ निकाला ।"[17]

आगे चलकर स्वंयx स्वयं त्र्यंबक पंडा का भी हृदय-परिवर्तन हो जाता है । सद्बुद्धि के जाग्रत होने पर वह स्वयं इस कटु सत्य को स्वीकार करता है —" वास्तव में उन बेचारी कन्याओं के साथ बड़ा

अत्याचार किया जाता है और उन कन्याओं का चरित्र निर्मल नहीं रहने पाता । कोई कन्या पण्डे की भोग्या बनती है, कोई सयानी होने पर स्वाधीन होकर वेश्यावृत्ति करने लग जाती है, कोई किसीके घर बैठ जाती है, कोई किसीसे विवाह कर लेती है, कोई पण्डाओं के द्वारा लोगों को प्रसाद स्वरूप दे डाली जाती है और कोई किसी-न-किसी के हाथ बेच दी जाती है ।"[18]

कुसुम चाहती तो अपने पिता के यहां पुनः रहने का प्रयास कर सकती थीं या वसंत के साथ सुख से जीवन व्यतीत कर सकती थीं, किन्तु वह स्वयं नहीं चाहती थी कि उसके पिता उसे प्रकट रूप से ग्रहण करें, क्योंकि न तो उस समय का समाज उन्हें एऐसा करने की आज्ञा देता और न वह किसी प्रकार की क्रान्ति करना चाहती थी । कुसुम के विचार या कहें लेखक के विचार उस समय के समाज से आगे नहीं जाते हैं । वेश्याओं के संदर्भ में गोस्वामीजी का अभिमत भी मेहता लज्जाराम शर्मा जैसा ही है । शायद ~~इसीx~~ इसीलिए लेखक ने कुसुम से एक स्थान पर कहलवाया है कि यदि वेश्याओं को भी समाज में जगह मिल गई तो हिन्दू समाज एक दिन "वेश्या-समाज" बन जायेगा ।[19]

उपन्यास में वसंत एक मात्र नयी विचारधारा वाला पात्र है । कुसुम के उक्त विचारों को सुनकर वह कहता है —" पर सुनो तो, जिस हिन्दू समाज में बड़े-बड़े कुल की कुलवन्तियां भी ऐसे-ऐसे भयानक काम करती हैं कि जिन पर ध्यान देने से फिर कभी इस समाज के नाम लेने का भी जी नहीं चाहेगा; ऐसी अवस्था में तुमने क्या पाप किया है, जो समाज तुम्हें अपनी गोद में जगह न देगा ।"[20] लेकिन वसंत भी एक सीमा से आगे नहीं बढ़ सकता । वह कुसुम से गांधर्व विवाह तो कर लेता है पर उसे प्रकट करने की हिम्मत वह भी शायद नहीं जुटा पाता है और इसीलिए कुसुम के कहने से ही सही उसकी बहिन गुलाब से वह विवाह कर लेता है ।

इस प्रकार लेखक ने प्रस्तुत उपन्यास के द्वारा देवदासी-प्रथा

और वेश्यावृत्ति की भर्त्सना तो खूब की है, यहां तक कि कुसुम के पिता इस प्रथा को बन्द करने और करवाने का बीड़ा भी उठाते हैं किन्तु सामाजिक रूढ़ियों का उल्लंघन करने और उसके विरुद्ध खुल्लम-खुल्ला विद्रोह करने का साहस उनमें भी नहीं है। उपन्यास में लम्बे-लम्बे भाषण देकर ही वह संतुष्ट हो गए हैं।

इस संदर्भ में डा. बिन्दु अग्रवाल कहती हैं — "इस प्रकार प्रेमचंद-पूर्व के उपन्यासकारों ने वेश्यावृत्ति की समस्या के विभिन्न पहलुओं पर विचार किया है और इस समस्या के समाधान की ओर भी उनकी दृष्टि गई है, पर इसे तत्कालीन शिक्षा और समाज-दर्शन की सीमा ही कहना होगा कि वे समस्या को गहराई से न पकड़ सके और न कोई समाधान ही दे सके।" 21

कुसुम देवदासी होने के बावजूद पवित्र रह सकी यह बात भी कुछ विचित्र-सी लगती है, पर कदाचित वह इसलिए भी हुआ हो कि कुसुम राजा कर्णसिंह की बेटी थीं। कुछ भी हो लेखक ने देवदासी-प्रथा की समस्या को उठाकर एक महत्वपूर्ण कार्य तो किया ही है, इस बात को नकारा नहीं जा सकता।

(5) मां :

"मां" विश्वम्भरनाथ शर्मा "कौशिक" का उपन्यास है। कौशिकजी प्रेमचंद युग के एक प्रमुख उपन्यासकार हैं। प्रेमचंद युग में उनके दो उपन्यास हमारे सामने आते हैं। ये दोनों उपन्यास आदर्शवादी दृष्टि से लिखे गए हैं। बाबू गुलाबराय के शब्दों में "कौशिकजी निम्न कोटि के पात्रों में, जैसे भिखारियों में मानवता के दर्शन कराने में सिद्धहस्त थे।" 22 निम्न वर्ग या श्रेणी के पात्रों में उच्च मानवीय आदर्शों की स्थापना करके वे मानो सिद्ध करते हैं कि भावों की उच्चता पर केवल उच्च वर्ग का ही अधिकार नहीं है। उनकी यह बात हमें इस उपन्यास में भी उपलब्ध होती है जब वे एक भली लड़की से वेश्या बनी बन्दीजान को पूरी सहानुभूति के साथ चित्रित करते हैं। "मां"

कौशिकजी का पहला उपन्यास है जो दाम्पत्य-जीवन की समस्या पर आधारित है । यह मुख्यतया दो दम्पतियों की कथा है । एक दम्पति है ब्रजमोहन और सावित्री का और दूसरा दम्पति है घासी-राम और सुलोचना का । ब्रजमोहन और सावित्री हर तरह से सुखी हैं, किन्तु उनके जीवन में कमी है तो एक मात्र संतान की । निःसंतान होने से वे बहुत दुःखी रहने लगते हैं । अपने जीवन के इस अभाव को दूर करने के लिए वे लोग घासीराम और सुलोचना के पुत्र श्यामनाथ को गोद ले लेते हैं । अधिक लाड़-प्यार में पलने के कारण श्यामनाथ बिगड़ जाता है । वह दुराचारी और वेश्यागामी हो जाता है । ठीक यह वह बिन्दु है जहां से उपन्यास में वेश्या-जीवन का चित्रण शुरू होता है । ब्रजमोहन श्यामनाथ को रास्ते पर लाने के लिए बहुतेरे प्रयत्न करते हैं, लेकिन अपनी पत्नी के सामने वह विवश हो जाते हैं । श्यामनाथ को विपथगामी होने से बचाने के लिए ब्रजकिशोर उसका विवाह कर देते हैं । विवाह हो जाने के बाद श्यामू अपनी नव-विवाहिता पत्नी में इतना अनुरक्त हो जाता है कि वह वेश्यागमन छोड़ देता है । इस प्रकार लेखक ने उपन्यास को एक आदर्शवादी मोड़ देकर उसे सुखान्त बना दिया है । लेखक की समझ के अनुसार श्यामू का विवाह हो गया और वह सीधे रास्ते पर आ गया । लेकिन जीवन इतना सरल नहीं होता है और समाज में अनेक उदाहरण ऐसे मिलते हैं कि जो व्यक्ति वेश्यागामी होता है या शराबी होता है, वह कुछ समय के लिए भले इन दोनों चीजों का त्याग कर दे, पर फिर विवाह का खुमार उतरते ही ऐसे लोग पुनः उन रास्तों पर चल देते हैं । हिमांशु श्रीवास्तव कृत उपन्यास " नदी फिर बह चली " का नायक पत्नी परबतिया को खूब चाहता है । परबतिया भी सुंदर और सुशील है । किन्तु नायक की बाहर मुंह मारने की आदत छूटती नहीं है और वह फिर वेश्याओं के पास जाना शुरू कर देता है । खैर, यह एक प्रेम-चंद युग का सुधारवादी उपन्यास है, अतः उसकी परिणति उसी तरह हुई है । हां, लेखक ने वेश्या-जीवन के कुछ जीवन्त चित्र जरूर दिए

हैं ।

प्रेमचंद युग के उपन्यासकारों ने जहां एक ओर वेश्या के कलंकित वेश में छिपी परित्यक्ता , तिरस्कृत नारी की कोमल भावना और उसके उद्धार-कामना का चित्रण किया है ; वहां दूसरी ओर उसकी प्रकट कुचेष्टाओं और बाजारू हाव-भावों के प्रदर्शन का सजीव चित्र प्रस्तुत किया है । परंतु किशोरीलाल गोस्वामी की भांति इस प्रकार के वर्णनों का उद्देश्य किसी भी प्रकार की रस-सृष्टि नहीं है । काम-लोलुप दृष्टि से इनका सृजन नहीं हुआ है । इस प्रकार के दर्शन द्वारा लेखक पुरुष-समाज को वेश्या से विरत करना चाहते थे । वेश्यावृत्ति के उन्मूलन के एक पहलू के रूप में ही सुधारवादी दृष्टिकोण से ही वे इसका वर्णन करते थे ।

अनेक सामाजिक , आर्थिक , परिस्थितिजन्य विवशताओं के कारण कोई नारी जब वेश्यावृत्ति करने के लिए विवश हो जाती है और उसके पास दूसरा कोई चारा नहीं रहता , तो "मरता क्या न करता " वाली मनोवृत्ति के तहत वे वेश्याएं उस माहौल में मन लगाने की चेष्टा करती हैं । धीरे-धीरे वह उसकी अभ्यस्त भी हो जाती हैं । जीविका का अन्य कोई साधन न होने के कारण उसको अपने इस कार्य में छल , कपट , झूठ और आडम्बर का सहारा लेना पड़ता है । यही इस वृत्ति की प्रकृति है , यही उसका पेशा है । बिना इन चेष्टाओं का सहारा लिए वेश्या बनकर भी उसकी जीविका की समस्या हल नहीं होती । इस प्रकार का बनावटी और आडम्बर-पूर्ण व्यवहार करते-करते कुछ वेश्याएं उसकी इतनी अभ्यस्त हो जाती हैं कि वे उनके चरित्र का एक अविभाज्य अंग बन जाती हैं और उनकी तमाम सद्वृत्तियां राख के ढेर के नीचे दब जाती है ।

कौशिकजी के इस उपन्यास में वेश्या के आडम्बरयुक्त लोलुप जीवन का यथार्थ चित्रण हुआ है । वह किस प्रकार मिथ्या प्रेम-प्रदर्शन से युवकों को फंसातहि हैं , किस प्रकार जिस पुरुष के पास अधिक धन

होता है उसके प्रति उसके प्रेम-प्रदर्शन की मात्रा बढ़ जाती है , इन सबका इस उपन्यास में भलीभांति वर्णन हुआ है । विश्वनाथ , श्यामनाथ और गोकुलचन्द ये तीनों वेश्यागामी पुरुष हैं । एक बार इन तीनों को देखकर वेश्या बन्दी की मां कहती है —" या अल्लाह , जब से आपको चौक में घूमते देखा , तब से मछली की तरह तड़पती फिरती रही । कई बार कहा — " आज अभी तक नहीं आये , क्या न आवेंगे ? " और मैं कहती थी आवेंगे जरूर । आखिर वही हुआ ।" 25 तब बन्दी और अधिक रंग जमाने के लिए एक हृदय-हारिणी मुख-भंगी करके कहती है —" भई , हम अपनी आदत को क्या करें । हमारी तो जिससे मुहब्बत होती है , उसीसे बातचीत करने को जी चाहता है । यों हमसे हंसा नहीं जाता , चाहे कोई लखपति हो या करोड़पति । हम तो मुहब्बत के भूखे हैं , रूपये के भूखे नहीं । रूपया लेकर हमें करना क्या है ? जिस ख़ुदा ने पैदा किया है , वह शाम तक खाने को दे ही देगा ।" 25 जब कमरून्निसा और शम्सुन्निसा जैसी वेश्याओं के कारण श्यामनाथ बहुत दिन तक वेश्या बन्दी के पास नहीं आता तो उसकी स्वार्थ-भावना प्रकट हो ही जाती है । वह अपनी मां से कहती है —" मैं उन्हें आसानी से थोड़े छोड़ दूंगी, अगर कहीं आँख लगी भी होगी , तो भी जहां तक होगा , पंजे से निकलने न दूंगी ।" 26

इस प्रकार प्रेमचंद युग के उपन्यासकारों ने वेश्या की नितान्त स्वार्थ-वृत्ति का चित्रण करके पुरुष-समाज को सावधान करने की चेष्टा की है । इसमें उनका वही सुधारवादी दृष्टिकोण है । साथ ही उन्होंने यह भी निरूपित किया है कि वेश्यागमन से स्वास्थ्य और धन दोनों की हानि होती है और वेश्यागामी पति की पत्नी की भी बड़ी दुर्गति होती है । प्रस्तुत उपन्यास में वेश्यागामी पति के कारण चुन्नी की ऐसी ही अवदशा होती है । चुन्नी एक सती-साध्वी स्त्री है और पति की इन आदतों के पीछे वह मरकर ही दम लेती है । लेकिन डा. कुंवरपाल सिंह ने "मां" उपन्यास के वेश्या-प्रसंग के एक दूसरे आयाम को भी उजागर किया है । कौशिकजी ने इस उपन्यास में वेश्याओं के भीतर की चेतना व मानवता को भी कहीं-कहीं उजागर

किया है । इस दृष्टि से वे प्रेमचंद और प्रसाद से भी एक कदम आगे हैं । कौशिकजी वेश्यावृत्ति का एक मात्र कारण निर्धनता व गरीबी मानते हैं । बेगम और उसकी तीनों पुत्रियां इस पेशे से घृणा करती हैं । लेकिन गरीबी के कारण जीने का और कोई अवलंब या विकल्प उनके पास नहीं रह जाता , तब मजबूर होकर वे इस ~~सत्यानाशी~~सत्यानाशी और चेतनानाशी धंधे में आती हैं । साथ ही कौशिकजी ने एक भली लड़की से जो वेश्या बनी है ऐसी बन्दीजान को अपनी सहानुभूति प्रदान की है । उपन्यास में एक स्थान पर बन्दीजान के संदर्भ में वह लिखते हैं —

" उसकी रुचि भी वैसी ही थी जैसी एक स्त्री की स्वाभाविक रुचि होती है । यह बात दूसरी थी कि वह धन के कारण अपनी रुचि के प्रतिकूल कार्य करने को भी प्रस्तुत रहती थी , धन के कारण अरुचिकर पुरुष से भी प्रेमालाप करती थी । केवल इतना ही नहीं , धन के कारण उसे ऐसे पुरुष का भी तिरस्कार करना पड़ता था , जिससे प्रेमालाप करने में उसके हृदय को आनंद प्राप्त होता था । इसलिए वह वेश्या थी , यही उसमें वेश्यापन था ।" [27] ध्यान रहे यह उसी बन्दीजान के बारे में कहा गया है जिसकी स्वार्थ-वृत्ति की चर्चा पहले की जा चुकी है । अभिप्राय यह कि कौशिकजी वह पहले उपन्यासकार हैं जो वेश्याओं के अन्तर्मन को झांकने में एक हद सफल हुए हैं । उनके बाहरी कीचड़ के भीतर के कमल को वह देख सके हैं ।

§5§ ~~अंधेरे~~ अंधेरी गली का मकान :

"अंधेरी गली का मकान" कथ्य और शिल्प उभय दृष्टि से प्रेमचन्दयुगीन परंपरा का उपन्यास है । उसके लेखक जानकीप्रसाद शर्मा हैं । उपन्यास के प्रारंभ में "अपनी बात" में लेखक प्रस्तुत उपन्यास को विघटन, अनास्था , अस्तित्व-रक्षा , स्वतंत्रता की तलाश आदि का उपन्यास बताते हैं । [28] किन्तु हम यहां इस उपन्यास की चर्चा उसमें चित्रित वेश्या-जीवन को लेकर कर रहे हैं । किशोरीलाल एक गांव में रहने वाला व्यक्ति है । शहर की चमक-दमक से आकृष्ट होकर वह शहर में रहने लगता

है । गांव से उसका सम्बन्ध केवल इतना रह जाता है कि अपनी जमीन दूसरों को जोतने के लिए दे दे और फसल के अवसर पर जाकर उनसे अपने हिस्से का रूपया वसूल करके पुनः शहर आ जाए । जब शहर में रहने लगता है तो शहर के अपलक्षण उसे जल्दी व्यापने लगते हैं । इसी सिल-सिले में वह चम्पा नामक वेश्या से आशनाई करने लगता है । पति की इस बुरी लत से वह बहुत चिंतित रहती है और उसीमें रातदिन घुलते हुए एक दिन इस संसार से बिदा ले लेती है । पत्नी से उसे एक कन्या थी , जिसका नाम शीला था । वह अब युवती हो चुकी थी । पत्नी की मृत्यु के उपरान्त किशोरीलाल और भी बेपरवाह हो जाता है और चम्पा को ही पत्नी मानने लगता है । चम्पा से उसे राजू नामक एक पुत्र होता है , किन्तु मां की प्रतारणा से क्षुब्ध होकर वह घर छोड़कर भाग जाता है । ~~किशोरी~~× किशोरीलाल चम्पा के लिए अपनी आधी जमीन भी बेच देता है और धीरे-धीरे उसकी माली हालत और भी खराब होती जाती है । किशोरीलाल की बिगड़ती आर्थिक स्थिति और खोये हुए पुत्र राजू के शोक में चम्पा पुनः वेश्या-जीवन व्यतीत करने लगती है । चम्पा के ग्राहकों को देखकर किशोरीलाल कसमसाता रहता है । चम्पा यथाशक्ति सत्य छिपाने की चेष्टा करती है , किन्तु सत्य है कि किसी-न-किसी तरह सामने आ ही जाता है ।

पत्नी की मृत्यु के उपरान्त किशोरीलाल को अपने किए पर थोड़ा-सा पश्चाताप होता है और अपनी बेटी शीला को विवाह-योग्य देखकर उसके विवाह-सम्बन्ध के लिए गांव जाता है । वहां अपने मित्र और रिश्ते के भाई शंकर महाराज के माध्यम से गांव के चौधरी के लड़के उमेश से शीला का सम्बन्ध निश्चित कर दिया जाता है । विवाह का प्रबंध करने के लिए वह अपनी आधी जमीन भी श्रीनारायण नामक एक शाह के यहां गिरवी रखता है । घर विवाह की चहल-पहल , गाने-बजाने आदि से चहकने लगता है और चारों तरफ आनंद-उल्लास का वातावरण है । पर ऐन मौके पर किशोरीलाल का अतीत उनकी लड़की के आड़े आ जाता है । किशोरीलाल के शराबी-~~कबाबी~~ कबाबी और

वेश्यागामी होने का राज़ सब पर खुल जाता है और फलतः उमेश भी शीला के चरित्र पर संदेह करके सम्बन्ध विच्छेद कर देता है । जिस प्रकार "सेवासदन" उपन्यास में सुमन के गौनहारिन वेश्या हो जाने की खबर से उसकी बहन शान्ता की शादी टूट ××× जाती है, ठीक उसी तरह बाप के ××××××××××× कर्मों की सज़ा यहाँ शीला को भुगतनी पड़ती है ।

शंकर महाराज शीला का विवाह अन्यत्र करवाने का आश्वासन देते हैं, पर शीला के स्वाभिमान को यह स्वीकार्य नहीं है और इसलिए वह ताजिन्दगी विवाह न करने का अटल निश्चय करती है । किशोरीलाल अब वेश्या के कोठे पर तो नहीं जाता, लेकिन पुरानी लत के कारण ह×× घर पर ही मदिरा और मीनाक्षी का प्रबंध कर लेता है । शीला को शीघ्र ही इस बात का पता चल जाता है पर वह जानकर अनजान बनी रहने का नाटक करती है । एक दिन वह अपने पड़ोस में हो रही सत्यनारायण की कथा में जाती है । वहाँ अनपढ़, गंवार और रूढ़िग्रस्त स्त्रियों की लांछनापूर्ण बातों को सुनकर उसके मन में विद्रोह की आग भभक उठती है और वह वेश्या-वृत्ति का इरादा बनाकर चम्पा के कोठे पर जा पहुंचती है । जब किशोरीलाल को इस बात का पता चलता है तब वह शीला को ढूंढता हुआ चम्पा के कोठे पर पहुंचता है, परन्तु शीला उसे वहां ×× नहीं मिलती है । कई दिनों बाद वह उसे चम्पा के कोठे पर देखता है । शीला उसे खूब खरी-खोटी सुनाती है । किशोरीलाल चुपचाप सब सुन लेता है और रोते हुए उसे वापस लौट जाने के लिए समझाता है, पर शीला टस से मस नहीं होती ।

दूसरी ××× ओर किशोरीलाल-चम्पा का पुत्र जो घर से भाग गया था, श्रीनारायण शाह के यहां पहुंच जाता है । श्रीनारायण संतानहीन था, अतः राजू को पुत्रवत् पालता है । वह अब राकेश के नाम से जाना जाता है । अत्यन्त लाड़-प्यार के कारण हो या वेश्या मां के खून का असर हो वह भी बुरे व्यसनों में फंसकर वेश्यागामी हो जाता है । ××× वह भी चम्पा के कोठे पर

जाने लगता है। कोठे पर राहत नामक एक वेश्या के प्रेम में अंध होकर वह स्वयं को बर्बाद कर लेता है। उन्हीं दिनों में चम्पा के कोठे पर ही उसकी मुलाकात किशोरीलाल से हो जाती है। किशोरीलाल उसे अपनी और शीला की दुखभरी दास्तान सुनाता है। राकेश का दिल पसीजता है और वह शीला से ब्याह करने के तैयार हो जाता है। पर उसके पहले एक घटना घटित होती है। ज्यों ही इस बात की सूचना राहत और चम्पा को मिलती है वे राकेश को मारने के लिए चाय में जहर घोल देती है। चाय पीते-पीते राकेश अपने बचपन का फोटो राहत को दिखाने लगता है। राहत वह फोटो चम्पा को दिखाती है। फोटो पर नजर पड़ते ही चम्पा अपने बेटे को पहचान लेती है। इस प्रकार एक मां ही अपने पुत्र को विष देकर मार डालती है। इस प्रकार रूस्तम-सोहराब या ओथैलो-डैस्डिमोना की नियति ‡Destiny‡ फिर एक बार सामने आती है।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि " अंधेरी गली का मकान " उपन्यास अपने कथ्य और शिल्प दोनों दृष्टियों से प्रेमचन्दयुगीन परंपरा का उपन्यास है। शहर में आकर खराब सोहबत में पड़कर किशोरीलाल मदिरापान, वेश्यागमन जैसी बुरी आदतों का शिकार हो जाता है। "परीक्षागुरु " के लाला मदनमोहन की भांति किशोरीलाल की जमीन-जायदाद भी बिक जाती है। उसके वेश्यागामी होने के कारण उसकी बेटी का विवाह टूट जाता है और उसे लोगों के ताने-तिसने सुनने पड़ते हैं। उसकी प्रतिक्रिया में वह स्वयं वेश्या हो जाती है। इस प्रकार द्वितीय अध्याय में हमने वेश्या के उद्भव के जिन कारणों की चर्चा की है, वे यहां दृष्टिगोचर होते हैं।

‡6‡ सेवासदन :

"सेवासदन" पहले उर्दू में " बाजारे हुस्न " के रूप में लिखा गया, परंतु प्रकाशन पहले हिन्दी में सन् 1918 ई. में हुआ। इसके द्वारा प्रेमचन्दजी की चौमुखी सामाजिक दृष्टि का सर्वप्रथम परिचय

हिन्दी पाठकों को होता है । यह उपन्यास वेश्यावृत्ति का विश्लेषण करने वाला एक सामाजिक व समस्यामूलक उपन्यास है । "सेवासदन" अपने मनोवैज्ञानिक चित्रण , विषय की गम्भीरता , तत्कालीन वेश्या-वृत्ति समस्या की जटिलता और उसके प्रस्तावित समाधान के लिए निर्विवाद रूप से एक युगान्तकारी रचना है । नारी वेश्या क्यों बनती है ? इस प्रश्न की बड़ी गम्भीरता से यहाँ चर्चा हुई है । नारी की अपनी व्यक्तिगत दुर्बलताएं , समाज की कुप्रथाएं , सामाजिक वातावरण और पारिवारिक स्थिति किस प्रकार एक नारी को अनैतिकता की ओर ले जाने में सहायक होते हैं , यह "सेवासदन" की नायिका सुमन के चरित्र से भलीभांति विश्लेषित हो जाता है ।

अनमेल विवाह और दहेज समस्या परस्पर अनुस्यूत हैं । सुमन जैसी सुंदर-सुशील लड़की को बिना दहेज के लिए कोई लेने को तैयार नहीं है । उपन्यास का प्रारंभ ही एक व्यंग्यात्मक वाक्य से होता है —" पश्चाताप के कड़वे फल कभी-न-कभी सभीको चखने पड़ते हैं , लेकिन लोग बुराइयों पर पछताते हैं । दरोगा कृष्णचन्द्र अपनी भलाइयों पर पछता रहे थे ।" 29 सुमन के पिता पुलिस में दरोगा थे , पर अपनी प्रामाणिकता के चलते उन्होंने कभी रिश्वत नहीं ली थी । तनख्वाह में घर भले से चल रहा था । उन्होंने कभी यह सोचा नहीं था कि बेटियों की शादी करनी है और उसके लिए दहेज भी जुटाना होता है । वह तो समझ रहे थे कि सुमन जैसी लड़की के लिए दसियों वर बिना दहेज के मिल जायेंगे । परंतु जब वास्तविकता उनके सामने आयी तो उनके हाथ-पांव फूल गये । एक सज्जन ने बताया —" महाशय , मैं स्वयं इस कुप्रथा का जानी दुश्मन हूं । लेकिन करूं क्या ? अभी पिछले साल लड़की का विवाह किया । दो हजार रुपये केवल दहेज में देने पड़े । {यहाँ इस बात का ध्यान रखा जाए कि ये दो हजार रुपये बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक के हैं , आज के हिसाब से यह रकम चालीस-पचास हजार की हो सकती है । } दो हजार और खाने-

पीने में खर्च पड़े । आप ही कहिए यह कमी कैसे पूरी हो ?" 30 दूसरे महाशय इनसे भी अधिक नीति-कुशल थे । उन्होंने बताया — " दारोगा-जी मैंने लड़केको ~~xxxxxx~~ पाला है । सहस्त्रों रूपये उसकी पढ़ाई में खर्च किए हैं । आपकी लड़की को इससे उतना ही लाभ होगा जितना मेरे लड़के को । तो आप ही न्याय दीजिए कि यह सारा ~~xxxx~~ भार मैं अकेला कैसे उठा सकता हूं ?" 31 अब दारोगाजी क्या तो न्याय देते और क्या अन्याय देते । फलतः बेटी के दहेज को जुटाने के लिए अनभ्यस्त दरोगाजी रिश्वत लेते हैं और पकड़े जाते हैं । उन्हें जेल हो जाती है । दरोगाजी को जेल हो जाने के बाद सुमन की मां के पास और कोई चारा नहीं रह जाता , और उसे गजाधर ~~जैसे~~ जैसे अपात्र के गले मढ़ दी जाती है ।

इस प्रकार दहेज न दे सकने के कारण सुमन का विवाह गजाधर से होता है जो अपढ़ , गंवार , दरिद्र , कृपण , शंकाशील , उज्जड़ और लापरवाह किस्म का इन्सान है । दूसरी ओर सुमन को शुरू से ही अच्छा खाने-पीने- ओढ़ने का शौक है । उसकी प्रकृति भी कुछ-कुछ चंचल है । इस तरह पति-पत्नी की प्रकृति में आकाश-पाताल का अंतर है । सुमन बचपन से जिस वातावरण में पली-बढ़ी उसने उसे अपव्ययी और आत्माभिमानी भी बना दिया था । सुख-संतोष के साथ दरिद्रता में जीना उसे नहीं आता था , दूसरी ओर गजाधर की आय बहुत सीमित थी और अधिक कमाने की न उसमें हैसियत थी , न इच्छा । स्वयं को रानी समझने वाली सुमन को अपनी भावनाओं का गला घोंटकर निर्धनता में रहना पड़ता है । जब पास-पड़ोस की औरतें वस्त्राभूषण आदि के बारे में उसकी राय लेती हैं , तब ऊपर-ऊपर से निष्काम होने का अभिनय करती है , किन्तु अन्दर-ही-अन्दर उसका जी कचोटता है । वह मन-ही-मन सोचती है कि ये सब स्त्रियां नये-नये गहने बनवाती हैं , नये-नये कपड़े-लत्ते लेती रहती हैं और उसे मन मसोसकर रह जाना पड़ता है । फलतः उसके मन में असंतोष की भावना तीव्रतर होती जाती है । उसके भीतर के इस असंतोष का बड़ा ही मनोवैज्ञानिक चित्रण

प्रेमचंदजी ने किया है ।

प्रेमचंदजी ने यहां बड़े यथार्थवादी ढंग से यह दिखाया है कि किस प्रकार समाज में नैतिक आचार-विचारों की आड़ में अनेक ऐसे अनैतिक कार्य चलते हैं जिनका प्रभाव व्यक्ति के मन पर अनिवार्यतः पड़ सकता है । लेखक ने बताया है कि जिनके पास धन है, यश है, वे अनैतिक कार्य करते हुए भी धर्मात्मा एवं आदरणीय बने रह सकते हैं । सच ही " सर्वे गुणाः कांचनं आश्रयन्ति " संसार का नियम हो गया है । डा. पारुकान्त देसाई का निम्नलिखित शेर बिलकुल यथार्थ है —

" सत्ता जुड़ती धन के पीछे, धरम जुड़ता धन के पीछे ;
धन के पीछे भाग रहे सब, चाट रहे हैं तलवा तलवा ।"[32]

सुमन के मन में प्रारंभ में तो संस्काररूप नैतिक आचार-विचार थे, किन्तु ये नैतिक विचार किस प्रकार शनैः शनैः अनैतिकता की ओर अग्रसर होते गये हैं उसका बड़ा ही स्वाभाविक व मनोवैज्ञानिक चित्रण यहां लेखक ने किया है । प्रारंभ में सुमन के हृदय में परंपरागत नैतिकता-अनैतिकता और पाप-पुण्य का विवेक था । वह वेश्या को दुश्चरित्र और कुलटा समझती थी और अपने मन को भीतर ही भीतर समझाती थी — " मैं दरिद्र सही, दीन सही, पर अपनी मर्यादा पर दृढ़ हूं, किसी भले मानुस के घर में मेरी रोक तो नहीं, कोई मुझे नीच तो नहीं समझता ।"[33] लेकिन उसके इन खयालों पर भी एक दिन कुठाराघात होता है । मौलूद और रामनवमी वाले प्रसंग के बाद वह सोचने लगती है —" भोली के सामने केवल धन ही सर नहीं झुकाता, धर्म भी उसका कृपाकांक्षी है ।"[34] इस पर सुमन का पति गजाधर सही फब्ती कसता है —" आजकल धर्म धूर्तों का अड्डा बना हुआ है । इस निर्मल सागर में एक-से-एक मगर-मच्छ पड़े हुए हैं । भोलेभाले भक्तों को ~~xxxxx~~ निगल जाना ही उनका काम है ।"[35] इस पर एक और आघात सुमन को तब लगता है जब होलीवाले दिन भोली को मुजरे के लिए पद्मसिंह के यहां बुलाया जाता है । सुमन फिर सोचती है —" आज तक मैं समझती थी कि कुचरित्र लोग ही इन रमणियों पर जान देते हैं, किन्तु आज मालूम

हुआ कि उनकी पहुंच सुचरित्र और सदाचारशील पुरुषों में भी कम नहीं है।" 36

सुमन यदि अपने जीवन में दुःखी न होती और उसे यदि अपने मन-माफिक जीवनसाथी मिल गया होता, तो शायद उसका ध्यान इधर-उधर न भटकता। किन्तु उसके भीतर के असंतोष के कारण उसमें एक भटकाव आता है। दुर्भाग्य से सुमन के घर के सामने ही भोली का कोठा था। इसलिए सहज ही सुमन का ध्यान उधर आकर्षित होता है। अगर उसके घर के सामने भोली का घर न होता तो संभवतः सुमन का ध्यान उधर न जाता। द्वितीय अध्याय में वेश्यावृत्ति के उद्भव के कारणों में "वातावरण" को भी गिनाया गया है। इसे यहां सुमन के प्रसंग में हम चरितार्थ होते हुए देख सकते हैं। धर्मात्मा और ज्ञानी-ध्यानी कहे जाने वाले लोग भी भोली के एक-एक कटाक्ष पर स्वर्ग लोक का आनंद पा रहे थे। इस दृश्य से सुमन के हृदय पर वज्राघात होता है। अपने नैतिक आचरण के कारण वह जिस भोली को नीच और कुलटा कहती थी, वह महसूसती है कि लोग तो उसे देवी की तरह पूजते थे। एक बार थकी-हारी सुमन को चौकीदार बेंच पर से उठा देता है और कुछ ही देर बाद वही चौकीदार वेश्या भोली का स्वागत उसी बेन्च पर करता है। तब सुमन की ~~क्रोधाxxक्रोधाग्नि~~ क्रोधाग्नि धधक उठती है। वकील पद्मसिंह को तो सुमन सदाचार का अवतार समझती थी, लेकिन म्युनिसिपैलिटी का चुनाव जीत जाने पर वे ही पद्मसिंह अपने घर में भोली के नाच-गान का आयोजन करते हैं और एक मामूली रसिक की भांति भोली के आगे बिछ-बिछ जाते हैं। तब भद्र और प्रतिष्ठित कहे जाने वाले इन लोगों का ऐसा व्यवहार ही सुमन को बाध्य करता है कि वह अपने उपेक्षित जीवन की तुलना भोली के सम्मानित जीवन से करें। वह सोचती है कि भोली से कहीं अधिक सुंदर होने पर भी समाज में उसकी कोई खास वकत नहीं है, जब कि नीच कर्म करने वाली भोली उसी समाज की रानी बनी बैठी है। इस प्रकार अनजाने में ही उसका अज्ञात-मन (Unconscious mind) भोली के प्रति प्रतिद्वन्द्विता

का भाव महसूसने लगता है ।

सुमन जब इस प्रकार की द्वन्द्वात्मक स्थितियों से गुज़र रही थी , तब एक और घटना होती है जो उसे भोली के घर पहुंचाने में कारणभूत होती है । एक रात किन्हीं कारणों से घर पहुंचने में सुमन को देर हो जाती है । इस पर उसका पति किसी प्रकार की जांच-पड़ताल किये बगैर घर से निकाल देता है । लेकिन तब भी उसके पैर भोली के घर की ओर नहीं उठते । कुमार्ग पर जाने के लिए उसके संस्कार उसे रोकते हैं और थक-हारकर वह वकील पद्मसिंह के यहां चली जाती है , लेकिन वहां भी वह ज्यादा रह नहीं पाती , क्योंकि लोकोपवाद के डर से पद्मसिंह भी उसे अपने घर से जाने के लिए कहने पर विवश हो जाते हैं । तब वह सिलाई करके अपना पेट भरना चाहती है , किन्तु वहां भी पुरुषों की कामुक वृत्तियां उसे चैन नहीं लेने देती । हमारे समाज में घर से निकाली हुई स्त्रियों को लोग इज्जत की नज़र से नहीं देखते । सुमन अब पति-परित्यक्ता हो गई है । पुरुष-प्रधान समाज में कोई गजाधर का दोष नहीं निकालेगा । सब यही सोचेंगे कि उसमें ही कोई खोट रही होगी , जभी उसके पति ने उसे निकाल दिया है । विधवाओं और त्यक्ताओं की स्थिति हमारे समाज में एक-सी है । फलतः ये दोनों वेश्या बनाने के संदर्भ में बड़े सुगम लक्ष्य (Easy Target) सिद्ध होते हैं । इसे भी एक विडम्बना ही समझना चाहिए कि समाज के कर्णधार जिस सुमन को आश्रय नहीं दे सके , उसे अन्ततः भोली वेश्या के यहां ही आश्रय मिलता है । परंपरागत रूढ़ियों का , पीड़न और अत्याचार का , धर्म धन और सज्जनता के मिथ्याडम्बर का ही फल है कि अविवेक और लोकोपवाद के आघातों से हतप्राय सुमन विवश होकर भोली के चंगुल में फंस जाती है । ~~सुख~~-सुख-भोग की अबाध आकांक्षा , पति की ~~xxxxx~~ दासता से मुक्त होने की लालसा , रूप-प्रदर्शन की दुर्बलता , आर्थिक परतंत्रता , पति की और अपनी अनुभव-हीनता आदि कारणों से अंततः सुमन गृहिणी से वेश्या हो जाती है । इस प्रकार यह पहला उपन्यास है जिसमें एक गृहिणी के वेश्या हो जाने के कारणों की तार्किक व वैज्ञानिक चर्चा हुई है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि धन द्वारा प्राप्त सुख नहीं , वरन् धन द्वारा प्राप्त सम्मान व प्रतिष्ठा सच्चरित्र व्यक्ति को भी पतनोन्मुखी करती है । पुरुष अप्रामाणिक , घूसखोर , चोर व मक्कार बनता है , तो स्त्री वेश्या बनती है । वेश्या-समाज का निर्माण इन्हीं कारणों से होता है ।"[37] उपन्यास का एक पात्र अनिरूद्धसिंह मानो प्रेमचंदजी के ही शब्दों में कहता है — " हमारे शिक्षित भाइयों की बदौलत ही दालमण्डी (बनारस का वेश्या-बाजार) आबाद है । चौक में चहल-पहल है । चकलों में रौनक है । यह मीनाबाजार हम लोगों ने ही सजाया है । ये चिड़ियां हम लोगों ने ही फ ांसी हैं । ये कठपुतलियां हमने ही बनायी हैं । जिस समाज में अत्याचारी जमींदार , रिश्वती राज्य-कर्मचारी , अन्यायी महाजन , स्वार्थी बन्धु आदर व सम्मान के पात्र हों , वहां दालमण्डी क्यों न आबाद हो । हराम का धन हरामकारी के सिवा और कहां जा सकता है । जिस दिन नज़राना , रिश्वत और सूद-दर-सूद का अंत होगा , उस दिन दालमण्डी उजड़ जायेगी ।"[38]

सुमन गौनहारिन वेश्या हो जाती है । कुछ समय बाद सुमन की बहिन शान्ता का विवाह पद्मसिंह के भतीजे सदन के साथ तय होता है । इधर कृष्णचन्द्र भी जेल से छूटकर आ जाते हैं । बारात कृष्णचन्द्र के यहां आ जाती है , किन्तु उसी समय शान्ता की बहिन सुमन के वेश्या हो जाने का राज़ फाश हो जाता है , फलतः सदन के पिता बारात वापस लौटा जाते हैं । कृष्णचन्द्र कारण जानना चाहते हैं । तब उनको बताया जाता है कि कन्या की बहन दालमण्डी में बैठी है । कृष्णचन्द्र पहले तो सुमन को मार डालने की सोचते हैं , पर फिर गंगा में डूबकर आत्महत्या कर लेते हैं । इस प्रकार यहां भी "अंधेरी गली का मकान" की शीला की भांति शान्ता का विवाह टूट जाता है । वहां तो केवल बाप के वेश्यागामी होने की बात थी, यहां तो बहिन के पतिता होने की बात है । हमारा समाज एक बार पुरुष को मुआफ कर सकता है , स्त्री को नहीं । शान्ता को विधवा आश्रम में पनाह मिलती है । विट्ठलदास आदि समाजसुधारकों के प्रयत्न

से सुमन को भी भोली के कोठे से निकलवाकर उसी विधवाश्रम में रख दिया जाता है किन्तु सुमन के वेश्या हो जाने के रहस्य के खुल जाने से उसको वहां से भी निकलना पड़ता है । इस दरमियान सदन को अपने पिताजी के कार्य पर पछतावा होता है । वह गांव से शहर आ जाता है और एक नाव खरीदकर लोगों को नदी पार करवाने का कार्य करता है । वह मल्लाहों का नेता भी हो जाता है । आर्थिक दृष्टि से निर्भर होने पर वह शान्ता से विवाह करने का साहस जुटा पाता है । यहां एक तथ्य सामने आता है कि व्यक्ति जब आर्थिक रूप से स्वतंत्र होता है, तभी कोई क्रान्तिकारी कदम उठा सकता है । शैलेश मटियानी कृत कहानी " चिट्ठी के चार अक्षर " का नायक प्रताप ठाकुर नाई जाति की लड़की से प्रेम करता है । नायिका को उससे गर्भ भी रहता है, पर वह नायिका से विवाह करने की हिम्मत नहीं जुटा सकता । वही प्रताप जब आर्मी में भर्ती हो जाता है तब मय अपने बच्चे के नायिका को स्वीकार लेता है । [39] ठीक यही बात महिलाओं पर भी लागू होती है । शिक्षित ~~अ~~ महिला को जब उसका पति छोड़ देता है तब वह शिक्षित होने के कारण नौकरी ढूंढ लेती है और किसी गलत रास्ते पर नहीं जाती । "भाग्यवती" उपन्यास की भाग्यवती उसका एक ज्वलंत उदाहरण है । प्रस्तुत उपन्यास की सुमन भी यदि ~~सुशि×सुशि×~~ सुशिक्षित होती तो कदाचित परिणाम दूसरा होता ।

जब सदन शान्ता से विवाह कर लेता है, लगभग उसी समय सुमन को विधवाश्रम से निकाला जाता है । फलतः सुमन सदन-शान्ता के साथ रहती है । पर शान्ता भी उसे अधिक समय नहीं रख पाती । लोकोपवाद के कारण उसे शान्ता का घर भी छोड़ना पड़ता है । तब सुमन की भेंट स्वामी गजानंद से होती है । वस्तुतः यह सुमन के पति गजाधर ही थे जो अब साधु हो गये थे । उन्होंने अब सेवाधर्म अपना लिया था । वेश्याओं की लड़कियों के लिए उन्होंने

एक अनाथालय खोल रखा था और गजानंद उसकी संचालिका पद के लिए किसी योग्य पात्र की तलाश में थे । उसमें पचास कन्याएं थीं । स्वामी गजानंद उसके सामने यह प्रस्ताव रखते हैं और सुमन को भी एक मनचाहा काम मिल जाता है । इस प्रकार प्रेमचन्दजी ने उपन्यास को एक सुधारवादी-आदर्शवादी मोड़ दिया है ।

लेखक प्रस्तुत उपन्यास में प्रमुखतया वेश्या-समाज के उद्भव के कारणों की तलाश करते हैं । डा. कुंवरपाल सिंह अपने ग्रन्थ "हिन्दी उपन्यास : सामाजिक चेतना " में प्रस्तुत उपन्यास की विवेचना करते हुए लिखते हैं —" प्रेमचंद और उनके समकालीन लेखक वेश्यावृत्ति का कारण सामाजिक कुप्रथाएं , संकीर्ण नैतिक और धार्मिक बंधनों को समझते हैं । लेकिन प्रगतिशील उपन्यासकार इस समस्या के मूल में भूख, गरीबी और शोषण को उत्तरदायी ठहराते हैं । ... प्रेमचंद के उपन्यासों में चित्रित वेश्या जीवन से वेश्यावृत्ति के उन कारणों का बोध नहीं होता , जिन्हें वे अपने विचारों या समस्या के समाधान के रूप में स्वतंत्र भाव से प्रस्तुत करते हैं । उनके चित्रण में वेश्यावृत्ति का कारण आर्थिक परावलंबन और सामाजिक असुरक्षा है । लेकिन प्रेमचंद जब इस समस्या पर अपने विचार प्रकट करते हैं तो सामाजिक कुप्रथाओं , धार्मिक रूढ़ियों और मानव स्वभाव की असंगतियों को वेश्यावृत्ति के लिए दोषी ठहराते हैं ।"[40] और अपने मत के समर्थन के लिए वे भारत तथा अन्य देशों में इस संबंध में किए गए समाज-शास्त्रीय अध्ययन को प्रस्तुत करते हैं । यथा —" 65.6 प्रतिशत वेश्याएं आर्थिक कारणों से इस घृणित पेशे में आईं । 28.8 प्रति-शत सामाजिक कुप्रथाओं से त्रस्त होकर और केवल 5.6 प्रतिशत मनो-वैज्ञानिक और अन्य कारणों से इस ~~पेशे~~ पेशे में आईं ।"[41] कुछ भी हो लेखक का वस्तुवादी दृष्टिकोण उनके इस प्रथम उपन्यास में भी झलकता है । वे इसमें इस समस्या से सम्बद्ध नाना आयामों को इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं कि तत्कालीन समाज की परत-दर-परत खुलती चली जाती है ।

शहर की म्युनिसिपिल्टी के सामने यह प्रस्ताव पेश होने वाला था कि वेश्याओं को नगर से बाहर निकाल दिया जाय । म्युनिसिपिल्टी की मीटिंग के पहले ही मुसलमान सदस्यों की एक अलग सभा होती है । कैसे इस प्रश्न में भी [illegible] साम्प्रदायिकता लायी जाती है, इसका बड़ा ही यथार्थ चित्रण एक वस्तुवादी कलाकार होने के नाते प्रेमचंदजी ने किया है । यथा —" हाजी हाशिम ने इस सभा में कहा — बिरादराने वतन की यह नयी चाल आपने देखी ? वल्लाह इनको सूझती खूब है । बगली घूंसे मारना कोई इनसे सीख ले । {इस पर} अबुलवफा ने कहा —" मगर अब खुदा के फजल से हमको भी अपने नफे-नुकसान का अहसास होने लगा है । यह हमारी तादाद को घटाने की शरीह कोशिश है । तवायफें 90 फी सदी मुसलमान हैं, जो रोजे रखती हैं हज्जादारी करती हैं, मौलूद और उर्स करती हैं हमको उनके जाती फेलों से कोई बहस नहीं है ।" [42]

हिन्दू सदस्यों में भी एक से बढ़कर एक कूड़मगज है, वे भी इसे साम्प्रदायिक रंग देते हैं, किन्तु असल में उनका इसमें आर्थिक स्वार्थ है । मुसलमानों की सभा की बात सुनकर हिन्दू मेम्बरों की भी एक सभा हुई । उसमें चिम्मनलाल बोलते हैं —" मुझे यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं है कि हमारे मुस्लिम भाइयों ने हमारी गर्दन बुरी तरह पकड़ी है । [illegible] चावलमंडी और चौक के अधिकांश मकान हिन्दुओं के हैं, यदि बोर्ड ने यह स्वीकार कर लिया, तो हिन्दुओं का मलियामेट हो जायेगा । छिपे-छिपे चोट करना कोई मुसलमानों से सीख ले ।" [43]

वेश्याओं को शहर में रखने के पक्ष में एक वक्ता अपनी बात यों रखते हैं —" सच तो यह है कि यदि इनको निकाल दिया गया, तो देवताओं की स्तुति करने वाला भी कोई न रहेगा । वेश्यागृह ही वह स्थान है, जहां हिन्दू-मुसलमान दिल खोलकर मिलते हैं, जहां द्वेष का वास नहीं है, जहां हम जीवन-संग्राम से विश्राम लेने के लिए अपने हृदय के शोक और दुःख भुलाने के लिए शरण लिया करते हैं । अवश्य उन्हें शहर से निकाल देना उन्हीं पर नहीं, वरन सारे समाज पर

घोर अत्याचार होगा ।" [44] यहां कोई भी व्यक्ति वेश्या-समाज के "व्यू पोइण्ट" को नहीं रख रहा है, इसमें कोई मानवीय दृष्टिकोण नहीं है । सब अपने-अपने स्वार्थ और निहित हितों की दृष्टि से विचार करते हैं । यह प्रेमचंदजी ही है जिन्होंने इस बात को बेनकाब किया है ।

सुमन के संदर्भ में प्रेमचंद ने यह दिखलाया है कि वह वेश्यालय में पहुंचकर भी अपने हाथ से भोजन बनाती है । इसे प्रेमचंद-साहित्य के एक आलोचक जनार्दन झा ने यह टिप्पणी की है यह चित्रण अस्वाभाविक है । वे कहते हैं, " सुमन उस विलास की जगह पहुंचकर भी अपने हाथ से भोजन बनाने का कष्ट क्यों और किस तरह वहन कर रही थी, यह समझ में नहीं आता । " [45] किन्तु इसका बड़ा ही सटीक और तार्किक उत्तर डा. मन्मथनाथ गुप्त ने दिया है --" झाजी का यह मंतव्य उनकी मनोविज्ञान अनभिज्ञता सूचित करता है । झाजी मनुष्य स्वभाव से यह आशा करते हैं कि जब एक क्षेत्र में उसके सब बंधन, टैबू या रोक टूट गई, तो प्रत्येक क्षेत्र में उसके सब बंधन टूट जाने चाहिए । यह यांत्रिक तर्क का तकाजा अवश्य है, किन्तु जीवन की द्वन्द्ववादी वास्तविकता से परिचित लोग इसमें कोई भी अस्वाभाविकता नहीं देखेंगे । कुमारी एलगार्कर्न नामक एक जर्मन विदुषी ने बर्लिन की वेश्याओं के संदर्भ में जांच की, तो उन्हें ज्ञात हुआ कि बहुत-सी वेश्याएं नित्य ईश प्रार्थना करती हैं, यहां तक कि उपवास आदि भी रखती हैं, यद्यपि जहां तक पेशा करने का सम्बन्ध है, वे उसे बराबर करती हैं । यांत्रिक तर्कशास्त्र का तकाजा तो शायद यह हो कि वे ऐसा न करतीं, किन्तु वास्तविक रूप से जो तथ्य था, उसका हमें जो वर्णन मिला है, वह उसी प्रकार का था जैसा हम बता चुके हैं । सुमन को इस प्रकार वेश्यालय में रहते हुए भी अपने हाथ से भोजन पकाती हुई दिखाकर प्रेमचन्द ने मनोविज्ञान के ज्ञान का परिचय दिया है ; न कि इसके विपरीत । संभव है उन्होंने ऐसा प्रत्यक्ष देखा हो ।" [46] इस प्रकार "सेवासदन" प्रेमचंद की प्रारंभिक रचना होते हुए भी उसमें वेश्या-जीवन से सम्बद्ध अनेक पक्षों को लेखक ने उजागर किया है ।

§7§ बुधुआ की बेटी :

"बुधुआ की बेटी " पांडेय बेचन शर्मा " उग्र " द्वारा प्रणीत उपन्यास है । मुख्यतः यह अछूत समस्या से जुड़ा हुआ उपन्यास है, किन्तु वेश्या-जीवन का चित्रण उसमें प्रकारान्तर से आ गया । पहले यह उपन्यास सन् 1928 में प्रकाशित हुआ था । तदुपरान्त यह उपन्यास "मनुष्यानंद " शीर्षक से पुनः 1955 में प्रकाशित हुआ । इसमें लेखक ने यह बताने की चेष्टा की है कि अछूत वर्ग की लड़कियों का जो यौन-शोषण होता है, उसके कारण कई बार वे वेश्या-जीवन व्यतीत करने के लिए विवश हो जाती है या उसकी प्रतिक्रिया के रूप में वे वेश्या हो जाती हैं । बुधुआ चमार की बेटी रधिया अतीव सुंदरी है और आसपास के कई गांवों तक उसके रूप-सौन्दर्य की चर्चाएं होती हैं । "त्यागपत्र" उपन्यास में जैनेन्द्र उपन्यास की नायिका के अनिंद्य मृणाल के अनिंद्य सौन्दर्य पर टिप्पणी देते हैं कि ऐसा रूप विधाता सभी किसीको नहीं देता है और यदि देता है तो उसका मूल्य भी कदाचित वसूल कर लेता है । [47]

रधिया के संदर्भ में भी ऐसा ही होता है । गांव में घनश्याम नामक एक आवारा और मनचला किस्म का लड़का है । वह विलासी, लम्पट और कपटी है । छल-कपट और प्रलोभन के द्वारा वह रधिया पर बलात्कार करता है । गांवों में हम प्रायः देखते हैं कि छोटी जाति की बहू-बेटी पर गांव के उच्च वर्ग के लोग अपना अधिकार समझते हैं । "मैला आंचल", " जल टूटता हुआ ", "अलग अलग वैतरणी ", "सूखता हुआ तालाब आदि कई उपन्यासों में हम इस तथ्य को रेखांकित कर सकते हैं । निम्न जाति के लोग, विशेषतः स्त्रियां इसे अपनी नियति समझकर, झेल जाती हैं । और बाद में उसकी एक आदत-सी हो जाती है । " मैला आंचल " में हम देखते हैं कि कई ऐसी स्त्रियां हैं जिनको किसी बड़े आदमी की रखैल कहलवाने में कोई शर्म नहीं आती, बल्कि कई-कई तो इसमें गौरव का अनुभव करती हैं । किन्तु सभी

लड़कियां एक जैसी नहीं होती हैं । रधिया अलग प्रकार की लड़की है । घनश्याम उसके साथ बलात्कार करके उसका सर्वनाश कर देता है । इस घटना का बड़ा ही कुप्रभाव रधिया के चरित्र पर पड़ता है और इसका प्रतिशोध वह समूची पुरुष जाति से लेती है । वह अपने अद्वितीय सौन्दर्य का साधन के रूप में प्रयोग करती है । अपने रूपाकर्षण से वह पुरुषों को अपनी तरफ आकृष्ट करती है, उनको अपने प्रेमजाल में फंसाती है, और अन्ततः उनको छोड़कर उन्हें अर्द्धविक्षिप्त-सा बना देती है । इस खेल में उसे पाशवी आनंद आता है । इस प्रकार घनश्याम के कुकर्म और अमानुषी व्यवहार रधिया को क्रूर बना देते हैं और वह घायल शेरनी बनकर स्वार्थी और काम-लोलुप पुरुष जाति के विनाश का मानो व्रत ठान लेती है ।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाय तो रधिया में बलात्कार के कारण जो ग्रन्थि पैदा होती है उसे "सादवादी" (Saddism) ग्रन्थि कहते हैं और जो व्यक्ति इस ग्रंथि से पीड़ित होता है, उसे (Saddist) कहा जाता है । इन लोगों को दूसरों को पीड़ित करने में ही आनंदानुभूति होती है । [43] रधिया को पुरुष जाति को दुःखी और पागल करने में बड़ा आनंद आता है । इस प्रकार वह अनेक पुरुषों को अपनी तरफ आकृष्ट करती है, दूसरे शब्दों में अनेक पुरुष उसके जीवन में आते हैं । इस प्रकार उसका जीवन एक प्रकार से वेश्या से भी बदतर हो जाता है । वेश्या भी कभी-कभी किसी पुरुष से आकृष्ट होती है, उसे प्रेम भी करती है और इस तरह यौन-जीवन का आनंद उठाती है । [44] लेकिन रधिया को इनमें से कुछ भी हासिल नहीं होता । समाज उसे वेश्या और कुलटा कहते हैं ; और वह एक प्रकार की आग में निरंतर जलती है । बदले की ~~भावना~~ भावना व्यक्ति को कभी भी आत्मिक सुख नहीं दे सकती । कुछ समय के लिए उसे सुख-संतोष का अनुभव होता है, किन्तु उसकी वह आग उसे खुद को भी जलाकर राख कर देती है ।

उग्रजी का यह उपन्यास ठीक इसी बिन्दु पर कृष्णा सोबती के उपन्यास " सूरजमुखी अंधेरे के " से थोड़ा अलग पड़ता है । "सूरजमुखी

अँधेरे के " की नायिका रत्ती उर्फ रक्तिका पर उसके शैशवकाल में बलात्कार हुआ था । इसका इतना बड़ा मनोवैज्ञानिक कुप्रभाव उसके मानस पर पड़ता है कि वह यौन-दृष्टि से बिलकुल निकम्मी हो जाती है । रधिया की भाँति वह भी अप्रतिम सुन्दर है । इस सुन्दरता के कारण ही युवक पतंगों की भाँति उसकी तरफ खींचे चले आते हैं, परन्तु ऐन मौके पर वह निहायत ठण्डी पड़ जाती है । मनोविज्ञान की भाषा में इसे औरत का ठण्डापन ‡ Frigidity of Women ‡ कहते हैं । अतः उक्त दो उपन्यासों की नायिकाओं में अंतर केवल इतना है कि रधिया जहाँ योजनापूर्वक ऐसा करती है, वहाँ रक्तिका में यौन-ग्रन्थि की विवशता के कारण ऐसा होता है । [50]

यहाँ प्रश्न यह खड़ा होता है कि प्रस्तुत उपन्यास की रधिया वेश्या किस प्रकार है ? वेश्या यौन-कर्म के लिए पैसा लेती है, रधिया किसीसे पैसा लेती नहीं है, किन्तु उसके जीवन में बलात्कारी घनश्याम के अतिरिक्त भी कई युवक आते हैं, इस दृष्टि से उसे वेश्या या कुलटा कहा जाता है । "दिगम्बरी" ‡ सूर्यकुमार जोशी ‡ उपन्यास की नायिका या " किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई " की नर्मदा सेठानी को जिस अर्थ में हम वेश्या कहते हैं, ठीक उसी अर्थ में रधिया को वेश्या की कोटि में रखा जा सकता है । जिस प्रकार "अँधेरी गली का मकान" की शीला अपने वेश्यागामी पिता से प्रतिशोध लेने के लिए वेश्या हो जाती है, ठीक उसी तरह यहाँ रधिया बलात्कारी घनश्याम का प्रतिशोध पूरे पुरुष वर्ग से लेने के लिए यह विपथगामी रास्ता अपनाती है । शीला कोठे पर बैठती है । रधिया कोठे पर नहीं बैठती है इसलिए उसकी गणना वेश्याओं के अप्रकट समूह के अन्तर्गत की जा सकती है ।

‡8‡ ज़नानी सवारियाँ :

"ज़नानी सवारियाँ " ऋषभचरण जैन का उपन्यास है । इस उपन्यास को पहले "बुर्दाफरोश " नाम दिया गया था । बुर्दा-

फरोश याने रक्त का व्यापार । इसमें नारी के देह के व्यापार को, उसकी इज्जत-अस्मत के व्यापार को, उसके नाना हथकण्डों और अड्डों को ब्यौरेवार प्रस्तुत किया गया है । उपन्यास का लक्ष्य ही बुर्दा-फरोशी और उससे जुड़े अन्य आयाम हैं । जैन के उपन्यासों में हमें अनेकमुखी या बहुमुखी जीवनानुभवों और उनकी पैनी अन्तर्दृष्टि का परिचय मिलता है । हमारे सामाजिक जीवन के जो घिनौने कोने और अंतरे हैं उनका यथार्थ उनके उपन्यासों का मुख्य प्रतिपाद्य रहा है । "अदिखिट्ठुड हिरण्ययान" को अनावृत्त कर अप्रिय सत्य का दिग्दर्शन कराने में वे सिद्धहस्त हैं । अतः कई आलोचक उनको एमिल जोला की भाँति प्रकृतवादी उपन्यासकार मानते हैं । इस दृष्टि से वे उग्रजी के अधिक निकट हैं । जैन के "मयखाना", "हिज हाईनेस", "हरहाईनेस", "चम्पाकली", "[illegible]", "दिल्ली का व्यभिचार", "दिल्ली का कलंक", "दुराचार के अड्डे", "वेश्यापुत्र" जैसे उपन्यासों में इस जिस्मफरोशी के व्यवसाय का चित्रण उपलब्ध होता है । इनमें से कुछेक उपन्यासों पर यहाँ चर्चा होगी, क्योंकि हमारे शोध-प्रबंध का विषय ही इस समस्या से सम्बद्ध है । "जनानी सवारियाँ" इन उपन्यासों में हमारे प्रतिपाद्य विषय की दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण उपन्यास है ।

"ज़नानी सवारियाँ" अपने रचना-शिल्प में उनके अन्य उपन्यासों से थोड़ा अलग पड़ता है । उपन्यास को सात अध्यायों में विभक्त किया गया है । ये सात अध्याय इस प्रकार हैं — "लाला लोग", "बेचारी बच्चियाँ", "झाँसापट्टी", "दुकानदारी", "हाथ-पैर", "ठिकाने" और "ज़नानी सवारियाँ" । अंतिम अध्याय के नाम से उपन्यास को शीर्षक दिया गया है, क्योंकि इन "ज़नानी सवारियों" में विराजमान महिलाओं का प्रयोग देह के व्यापार के लिए होता है । वे व्यक्ति न होकर केवल "माल" हैं और समूचे उपन्यास में रक्त के इस

व्यापार को ही केन्द्र में रखा गया है । इन सभी अध्यायों में केन्द्रीय पात्र है रामजीदास । यह रामजीदास ही इन विविध अध्यायों की कहानियों को उपन्यास का रूप देता है । अन्यथा ये अलग-अलग कहा-नियां भी हो सकती हैं । उपन्यास की विभिन्न कथाओं में इस रामजीदास की घृणित एवं जघन्य गतिविधियों , काले कारनामों और गोरखधंधों का पर्दाफाश किया गया है ।

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता" कहने वाले हमारे ढोंगी और पाखण्डी समाज में नारियों की कैसी-कैसी पूजा होती है , उसका लेखक ने व्यंग्यात्मक चित्रण किया है । बुर्दाफरोश के इस पाजी व्यवसाय के लोग समाज में चारों तरफ अपना जाल फैलाए रखते हैं और उनमें वे मछलियां फंसती हैं जो सामाजिक कुरीतियों की शिकार होती हैं । उपन्यास का उद्देश्य है इस व्यवसाय से जुड़े आधारभूत कारणों पर प्रहार करना । लेखकीय वक्तव्य में कहा गया है — "अगर किसीने इस पुस्तक को पढ़कर महसूस किया कि इस राक्षसी व्यापार के विरूद्ध कुछ करने की जिम्मेदारी उस पर भी है , तो समझिये पुस्तक का सदुपयोग हो गया है ।" [51]

"लाला लोग" वाले अध्याय में बुर्दाफरोश रामजीदास के हथकंडों को बड़े ही मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है । इसमें रामजीदास एक ही लड़की को अक्षतयौना घोषित करके एक लालाजी से एक रात के सवा दो सौ रुपया ऐंठ लेता है । वह बात एक हजार से शुरू करता है और अंततः सौदा सवा दो सौ रूपये में पटाता है । दूसरी तरफ इसी लड़की को दिखाकर मनोहरदास जैसे कंजूस सेठ से भी पचहत्तर रूपया और एक साड़ी धरवा लेता है ।[52] यहां एक बात ध्यातव्य है कि उस जमाने के सौ रूपये आज के दो-तीन हजार से कम नहीं होते । रामजीदास की भाषा , तौर-तरीके और बातचीत करने का अंदाज बिलकुल औरतों के दलाल , जिनको भड़आ भी कहा जाता है , जैसे हैं । बाजार के लाला लोग जो सूदखोरी के व्यापार में , गरीबों का खून चूस जाते हैं और "चमड़ी जाय पर दमड़ी न जाय " वाली

कहावत को चरितार्थ करते हैं, वे भी रामजीदास की चालों के आगे अपनी सारी व्यापारिक चौकसी भूल जाते है और उसके कहने पर रूपया पानी की तरह बहाते हैं।

इस उपन्यास के दूसरे अध्याय का नाम है -- " बेचारी बच्चियां " । इसमें रामजीदास इस बुर्दाफरोशी के लिए लड़कियां कहां-कहां से और किस-किस तरह से हासिल करता है, उसका यथार्थ चित्रण किया है । इसके लिए बाकायदा एक तंत्र खड़ा किया गया है । एक जाल बुना गया है । बादाम उसी तंत्र का एक पुर्जा है । एक स्थान पर वह रामजीदास से कहता है --" जान तो हथेली पर रखनी पड़ी पर हनुमानजी की कृपा से सब मामले फतह हो गये । ... कई जगह दिक्कत उठानी पड़ी । आप जानिये अकेला आदमी ... कई-कई औरतें । खुफिया के आदमी कई जगह मिले । काठगोदाम पर टोका । बरेली पर पकड़ते-पकड़ते बचा, मुरादाबाद पर भी रोक हुई और गाजियाबाद पर भी चक्कर लगाये गये । लेकिन कहीं चकमा देकर, कहीं शान बघार कर, कहीं खुशामद करके तो कहीं धौंस दिखाकर काम निकाल लिया ।"[53] इसी अध्याय में जिन लड़कियों को झांसा देकर फांसा जाता है, बादमें उन पर कैसे-कैसे अत्याचार होते हैं उसको भी उद्घाटित किया गया है --" रामजीदास लपकता हुआ बराबर के कमरे में घुस गया और एक मजबूत चाबुक हाथ में लिए बाहर निकल आया । आते ही उसने बिना एक क्षण की प्रतीक्षा किए सड़ाक-सड़ाक चाबुक फटकारना शुरू किया । दोनों नवजवान और बादाम पत्थर की मूरत की तरह थमे यह दृश्य देख रहे थे । पांचों लड़कियों के शरीर चाबुक से उधेड़े जा रहे थे और उनके क्रन्दन से सारा कमरा भर गया था । जब रामजी मारते-मारते बेदम हो गया तो बोला -- " बादाम अब इन्हें ले जाओ, अपने-अपने साथियों से कहो कि रात भर में इनका सब नखरा उतार दें । "[54]

तीसरे अध्याय का शीर्षक "झांसापट्टी" है । इसमें बुर्दा-

फरोश रामजीदास लाला लोगों को कैसी-कैसी झाँसापट्टियां देता है उसका यथार्थ चित्रण किया है । वह एक बार एक लड़की की लागत अठारह हजार रूपया बताता है, जबकि वह उसे मुफ्त के दामों में मिली थी । वह उसे बादशाही खानदान से घोषित करता है । उसके नये नये नाम रखकर बाजार के छैलों से वह खूब रूपया उलीचता है । और यह धूर्त और कांइयां तो इतना है कि प्रत्येक ग्राहक यह समझता है कि इस नायाब चीज़ का रस बाजार भर में वही पहले चख रहा है ।[55] इसी अध्याय में एक स्थान पर एक लाला को यह कहकर खूब रूपया ऐंठता है कि उसके कारण उसकी एक "बच्ची" को बीमारी लग गई है और उसके इलाज के लिए उसे एक बड़ा आपरेशन कराना पड़ रहा है जिसमें हजारों का खर्चा होगा । वस्तुतः सेठ की बीमारी का पता उसे सेठ के मुंशी से होता है और उसने मुंशी को वादा किया था कि जो भी रकम वह सेठ से ऐंठेगा उसमें से आधा हिस्सा वह मुंशी को भी देगा, पर काम निकल जाने के बाद वह मुंशी को भी ठेंगा बता देता है और ऊपर से धौंस देता है कि ज्यादा चू-चपड़ की तो वह उसका भांडा फोड़ देगा और उसे नौकरी से भी हाथ धोना पड़ेगा ।

हमारे यहां सारे दो नंबरी धंधे करने के लिए, सरकार तथा समाज की आंखों पर पट्टी बांधने के लिए, ऊपरी तौर पर कोई सफेद-पोश एक नंबरी व्यवसाय करना पड़ता है और उसकी आड़ में दूसरे सब गोरखधंधे चलते हैं । रामजीदास भी ऊपरी तौर पर एक स्टेशनरी की दुकान चलाता है । उसके सारे काले धंधे इसी दुकान के माध्यम से चलते है । इसीलिए तो इस अध्याय का नामकरण किया गया है — "दुकानदारी" । वहां सेठ-साहुकार के मुंशी, राजे-महाराजे तथा जमींदारों के कारिन्दे और पुलिस दारोगा के सिपाही रामजीदास के पास आते हैं और उसे कौन-सी और कैसी लड़की कहां भेजनी है उसका संकेत दे जाते हैं । जानकार लोग उसी दुकान में उसका संपर्क करते हैं ।

"बुर्दाफरोशी" एक ऐसा गोरखधंधा है जिसमें कई-कई लोगों की सहायता लेनी पड़ती है । उनका अपना एक "नेटवर्क" होता है । इन लोगों के बिना रक्त का यह व्यापार चल नहीं सकता । कदाचित इसी लिए लेखक ने कहा है --" यही इनके हाथ-पैर हैं , इन्हीं की मदद से उनके रोजगार की बेल फलती है , इन्हीं के बल पर उन्हें घर बैठे "माल" हासिल होते हैं । यही उनके हाली-मवाली हैं और ये ही उनके अनुचर हैं , ये ही उनके यार हैं और ये ही मददगार । इन्हीं के जरिये उनकी पहुंच उन तहखानों तक हो जाती है , जहां सूरज की किरण भी जाते हुए डरती है । इन्हीं के सहारे ये लोग उन बातों को जान लेते हैं , जिन्हें सिर्फ ईश्वर ही जानता है । ये ही उनके हाथ-पैर हैं । "[56] इनके हाथ-पैरों में कोई आश्रम का संचालक होता है , तो कोई मंदिर का पुजारी होता है , कोई साधु बाबा , तो कोई जमाना खायी हुई तजुर्बेकार बुढ़िया ।

उसके बाद का अध्याय है -- " ठिकाने " । इसमें लेखक ने उन ठिकानों का वर्णन किया है , जहां से देह के इन व्यापारियों को , इन नर-पिशाचों को , अपने व्यवसाय के लिए "माल" सप्लाय होता है । यहीं से इन अभागिन लड़कियों को तरह-तरह के सब्ज बाग दिखाकर , नरक-कुण्ड में धकेला जाता है । इसी अध्याय में बड़ी कुशलता से लेखक ने चित्रित किया है कि रामजीदास जैसे लोगों को लड़कियाँ सप्लाय करने वाले जो ठिकानें हैं उनमें मंदिर , मठों , आश्रमों और उनसे सम्बद्ध साधु-xxxxxxxx संन्यासी तक शामिल होते हैं । वस्तुतः ये साधु-संन्यासी नहीं होते , किन्तु इस व्यवसाय को चलाने के लिए वे साधु-संन्यासी का भेश धारण करते हैं , क्योंकि हमारी "धर्मप्राण" जनता इनके झांसे में बहुत ही आसानी से आ जाती है । इसी अध्याय में एक आश्रम के संचालक का जिक्र आता है , जो आश्रम की भोली-भाली लड़कियों को रामजीदास जैसे लोगों के हाथ बेच देता है । लड़की को यह लालच दिया जाता है कि किसी अच्छे खानदान में उसका पुनर्विवाह करवा दिया जायेगा

और फिर उस बहाने उसे रण्डीखाने के नरकागार में धकेल दिया जाता है । आश्रम का यह संचालक एक स्थान पर बुर्दाफरोश रामजीदास से कहता है --" अनार उसका नाम है और यहां से पांच सौ कोश दूर के एक कसबे की वह बेटी है । शादी उसकी आठ वर्ष की उम्र में हुई थी ; लेकिन पतिदेवता बचपन में ही कहीं चल दिये । पांच छः बरस छाती पर पत्थर रखकर उसने रण्डापा काटा , लेकिन एक दिन एक दूत की नजर पड़ गई और उसे पुनर्विवाह ~~करने~~ ~~की~~ करवाने की लालच से उतार लिया गया ।" 57

इसी अध्याय में लेखक ने पुरानी दिल्ली के एक मंदिरके भगवा वस्त्रधारी साधु-बाबा के कुकर्मों का चित्रण भी किया है । ये साधुबाबा रामजीदास को नयी-नयी लड़कियां फांसकर देते हैं । निम्न-लिखित संवाद से यह तथ्य अपने आप स्पष्ट हो जाता है --" भगवान की आज्ञा और आत्मा की प्रेरणा से ही मैं केवल दो मास के लिए भ्रमण के लिए निकलता हूं । इस समय में दुखियों के दुख दूर करना ही मेरा एक मात्र उद्देश्य होता है । अब तुम स्पष्ट कहो कि तुम्हारा क्या दुःख है ? ... प्रौढ़ा स्त्री ने कहा कि महाराज ! यह बेचारी बहुत दुखिया है । ..." क्या दुख है ? " ... इसके पति बूढ़े है और दमें के आजार से बेदम रहते हैं । इस हालत में इस बेचारी का जीवन भाररूप बन रहा है । इसे किसी प्रकार इस संकट से छुटकारा दिलाने की कोशिश करें । ... साधु महाराज ने कह दिया -- " कल्याण होगा । " ... " बच्चा धनराज , तुम्हें इस लड़की का उद्धार करना होगा । " " 58

साधु महात्मा और प्रौढ़ा स्त्री के उक्त वार्तालाप में रामजीदास ही साधु का चेला "धनराज" है । कहना न होगा कि वह उस दुखिया बाला का उद्धार कैसे करेगा । साधु महाराज अपनी बात को थोड़ा और वजनी और विश्वसनीय बनाने के लिए फिर उसमें छौंक डालते हुए कहते है --" मैं सब समझता हूं धनराज ! लेकिन

इस दुनिया का उद्धार मैं तुम्हारे ही हाथों से कराना चाहता हूं । तुम ही मेरे ऐसे सच्चे भक्त हो जिस पर मैं यह उत्तरदायित्व छोड़ सकता हूं ।" 59 इस प्रकार दमे के मरीज उस बीमार बूढ़े की जवान खूबसूरत पत्नी रामजीदास के शिकंजे में आ जाती है । यहां हम देख सकते हैं कि रामजीदास, तजुर्बेकार कुटिल बुढ़िया या साधु-महाराज के चंगुल में ऐसी युवान स्त्रियां और लड़कियां फंसती हैं जो किसी-न-किसी तरह की सामाजिक रूढ़ि की शिकार होती हैं । पहले तो बचपन में ब्याह होना ही नहीं चाहिए, फिर यदि कोई ऐसी लड़की बेवा हो जाए, तो उसके दूसरे सम्मानजन्य विवाह की व्यवस्था होनी चाहिए, कन्याओं बूढ़े बीमार लोगों से ब्याह नहीं होना चाहिए, किन्तु ये सब बातें सामाजिक रीति-रिवाज, रूढ़ियों और परंपराओं के नाम पर होती हैं, जिसके कारण ऐसी निरीह बच्चियों को नरक से भी बदतर जिन्दगी जीनी पड़ती है ।

अंतिम अध्याय का शीर्षक है -- "जनानी सवारियां" । इस पर से ही उपन्यास को शीर्षक दिया गया है । इसमें रामजीदास अपनी कुछ सुंदरियों को एक राजा साहब की रियासत में भेजते हुए पाया जाता है । ये सुंदरियां महीनों से राजा साहब के गले का हार बनी हुई थीं और खुद रामजी को इस जगह कई बार आना पड़ा था । इनमें से कुछ तो अब राजा साहब के दिल से उतर गयी हैं, कुछ को वे छककर पी चुके हैं, जिनमें दो-एक से इनका मन नहीं भरा है, उन्हें रखकर बाकी को उन्होंने बिदा कर दिया है और इतनी बेटियों का बाप (?) बेचारा रामजी उन्हें बिदा कराकर ला रहा है ।" 60 रास्ते में कोई पूछता है तो रामजीदास बता देता है कि वे लोग तीर्थ करने गए थे और वहां से लौट रहे हैं । इस तीर्थयात्रा (?) के दौरान बीच-बीच में जिन-जिन गांवों में रामजीदास अपनी जनानी सवारियों के साथ पड़ाव डालता है, वहां भी उन-उन गांव में जमींदारों या ठाकुर साहबों से अपने खर्चे-पानी की व्यवस्था कर लेता है । ऐसे ही एक मौके पर एक गांव के तगड़े ठाकुर साहब को ताव चढ़ाकर

वह उनसे काफ़ी रूपया ऐंठ लेता है । यथा —" तब ठाकुर साहब ने जोश में आकर संदूकची उसके सामने सरका दी और कहा — " जितने मरजी आये , चुनकर ले जाओ , लेकिन तुम्हारी उस जनानी सवारी के नखरे ढीले किए बगैर अब मुझे चैन नहीं पड़ेगा । देखें वह कितनी घमण्डी व लालची है ।"... रामजी ने हजार रूपये के एवज में उस जनानी सवारी को रात भर के लिए ठाकुर साहब के तेज की ठोकरें खाने को भेज दिया ।" [61]

" इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने बुर्दाफरोश रामजीदास के माध्यम से हमारे समाज के एक घिनौने और रुग्ण स्वरूप को प्रस्तुत किया है । उपन्यास के भिन्न अध्यायों के अन्य पात्र तो अलग-अलग हैं , परन्तु इन सबको जोड़ने वाली कड़ी है — रामजीदास । उसके माध्यम से ही ये अलग-अलग पात्र और घटनाएं एक उपन्यास का रूप धारण करती है । इसमें लेखक ने हमारे समाज के नग्न यथार्थ को यथा-तथ्य रूप से प्रस्तुत किया है । " [62]

प्रस्तुत उपन्यास की एक विशेषता यह भी है कि उपन्यास के केन्द्र में उसका खलनायक रामजीदास है । वैसे इधर के उपन्यासों तथा फिल्मों में "एण्टी हीरो" की विभावना जोर पकड़ती जा रही है । "राग दरबारी" उपन्यास के नायक वैद्यजी भी खलनायक ही हैं , किन्तु जिस युग का यह उपन्यास है , उसमें उसे एक नवीन प्रयोग ही कहा जा सकता है ।

उपन्यास में निरूपित समस्या आज भी उतनी ही प्रासंगिक है , क्योंकि बुर्दाफरोशी का यह व्यापार आज भी खूब जोरों से चल रहा है , बल्कि बढ़ती हुई टेक्नोलोजी के साथ इसमें नये नये आयाम जुड़ गए हैं और जुड़ते जा रहे हैं । अभी हाल ही में बड़ौदा के मांजलपुर विस्तार में चल रहे एक वेश्यालय ।(जिसे गुजराती में "कूटणखाणुं" कहते है) के समाचार पिछले लगभग एक सप्ताह से बराबर-बराबर आ रहे हैं । मांजलपुर बड़ौदा के "पोश" कहे जाने वाले

विस्तारों में आता है । उसके "अक्षरधाम" नामक एक प्रतिष्ठित बंगलों में अनीति का यह धाम चल रहा था । समाचार में दिया गया है कि अनिता शर्मा और मनोज शर्मा नामक एक दम्पति पिछले छः महीने से इस "कूटखाने" को चला रहे थे । इसका अर्थ यह हुआ कि उसके पहले यह दम्पति किसी और प्रतिष्ठित विस्तार में रक्त का यह व्यापार चला रहे होंगे । उसमें आसमा नामक जो लड़की पकड़ी गई है वह मुश्किल से तेरह-चौदह साल की है । उस पर पिछले कई दिनों से लगातार-लगातार बलात्कार हो रहे थे और उसके साथ रति-सुख मानने वालों में बड़ौदा के कई प्रतिष्ठित लोग रहे हैं जिनमें पुलिस के एक बड़े अधिकारी एसीपी अडले× पटेल ने तो आत्महत्या कर ली है, क्योंकि इस "केस" को दबाने के लिए उनसे पचास लाख रुपये मांगे गये थे । बड़ौदा लड़कियाँ को सप्लाय करने का काम सलीम शेख× शेख और सायना करते थे । इस रैकेट में रिया नामक एक माडर्न युवति भी है जो फिलहाल फरार है । [63] इधर "एइड्ज़" की बीमारी के कारण कमसीन लड़कियों की मांग बढ़ रही है ।

{9} चम्पाकली :

" चम्पाकली " भी ऋषभचरण जैन का ही उपन्यास है । इसमें लेखक ने एक ऐसी तवायफ़ और वेश्या के जीवन को चित्रित किया है, जो वेश्या होते हुए भी एक सती-साध्वी स्त्री है । यह कथन किसीको विरोधाभासी प्रतीत हो सकता है । लेकिन यह भी उतना ही सच है कि जहां तक प्यार और मुहब्बत का सवाल है, वह बेमिसाल है । चाहती तो वह शानों-शौकत की ज़िन्दगी बसर कर सकती थी । पर उसने मुफ़लिसगी और दीवानगी को चुना । उसने मक्कारी और बेवफाई के स्थान पर दिल्ली की गलियों और बाजारों में भिखारिन बनकर टुकड़े मांगना स्वीकार किया । ये अपने मालिक और प्रेमी से बेवफाई कर जाती तो उसे जिन्दगी में दर-दर की ठोकरें न खानी पड़तीं । और मालिक भी कैसा ? मृत, मरा हुआ । लोग तो

व्यक्ति के जीते-जी उसके श्री-सत्ता-विहीन होने पर मुंह मोड़ लेते हैं, लेकिन चम्पाकली अपने मृत प्रेमी के साथ भी बेवफाई न कर पायी। इसकी प्रेम-निष्ठा में कोई फरक नहीं आया।

चम्पाकली की सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि एक रण्डी या वेश्या होने के बावजूद वह रामदयाल को बेइन्तिहा चाहती है। किन्तु दूसरी तरफ उसका प्रेमी रामदयाल उसे एक रण्डी ही समझता है। उसकी उपेक्षा करता है। बात-बात में रण्डी कहकर उसे अपमानित करता है। एक स्थान पर वह चम्पाकली से कहता है — " तुम रण्डी हो और रण्डी की क़ीमत मेरी नज़र में कागज के टुकड़ों से ज्यादा नहीं है।"[64] यही रामदयाल एक बार चम्पाकली के रोने पर कहता है —" रोने की इजाजत नहीं है चम्पाकली तुमको। अगर आंसू निकल गया तो तुम फेल हो गई। कलेजे की व्यथा को वहीं दबी रहने दो। तुम्हें आज की रात जिसने खरीदा है, तुम्हारा धर्म है कि उसे ख़ुश करो। वह हंसे तो हंसो, वह रोये तो भी तुम हंसो। उसकी सारी ज्यादतियां, उसके सारे ज़ुल्म, उसकी सारी इच्छाएं तुम्हें हंसते-हंसते सिर झुकाकर सहनी होंगी। यही तुम्हारे जीवन का उद्देश्य है। और उसमें फेल हुई तो तुम अपने आसन से गिर गईं। वह कोई भी हो, बूढ़ा हो, जवान हो, कुरूप हो, कमीना हो, रोगी हो, तुम्हें उसे गले लगाना ही होगा। आज की रात में उसकी इच्छाएं तुम्हारी इच्छाएं हैं। तुम उसकी औरत, रखैल, प्रेमिका, दासी सभी कुछ हो। तुम्हें वह ओढ़े या बिछाये, तुम उसे कदापि बाधा न दे सकोगी और चेहरे की भाव-भंगी से यह भी जाहिर न होने दोगी कि उसकी कोई चेष्टा तुम्हें नापसंद है। समझो, चम्पाकली यही तुम्हारा जीवन है।"[65] यहां मानो रामदयाल चम्पाकली को वेश्या-जीवन का "कोड आफ कण्डक्ट" समझा रहा है। जब वेश्या के तन का सौदा एक दिन, एक रात, या एक महीने के लिए हो जाता है तो उसका यही धर्म बन पड़ता है कि वह हर तरह से अपने खरीद-

दार को प्रसन्न रखे ।

किन्तु चम्पाकली तो किसी और ही मिट्टी की बनी हुई है । वह रामदयाल को तहेदिल से चाहती है । वेश्या होते हुए भी उसके उस प्रेम में एकनिष्ठता है । वह रामदयाल से कहती है —" हां, मैं तुम्हें प्यार करती हूं । मैं जानती हूं कि मुझे किसीको प्यार करने का अधिकार नहीं है । कोई मेरी इस बात पर यकीन नहीं करता ... लेकिन सच , मैं रण्डी बनकर तुम्हारे साथ कभी नहीं सोयी मेरे प्यारे , मैं तुम्हारी बनकर यहां रही हूं और मुझे उसके एवज में धन-दौलत की ख्वाहिश [illegible] सर्वथा नहीं है ... मैं जानती हूं कि तुम बहुत बड़े आदमी हो । मैं यह भी जानती हूं कि तुम पक्के तमाशबीन हो । यह भी मुझे पता है कि तुमने तमाशबीनी में हजारों रूपये स्वाहा किए हैं और यह भी मुझे तुम्हीं ने बतलाया कि तुम दिल भी रखते हो । लेकिन क्या तुम इस बात पर यकीन रखते हो कि कोई रण्डी भी दिल रखती है । और कोई रण्डी तुमसे भी बड़ा दिल रख सकती है ? अगर तुम यह नहीं जानते कि तो मैं यह चाहती हूं कि आज तुम यह जान लो । मै तुम्हें चाहती हूं और चाहती हूं कि तुम भी मुझे प्यार करो । इन कागज के टुकड़ों से तोलने वाले मुझे बहुत-से मिले और बहुत-से मिल जायेंगे , लेकिन क्या तुम ... सिर्फ़ तुम , रामदयाल क्या मुझे इनसे अलग रखकर भी प्यार कर सकते हो ?" [66]

रामदयाल के प्रति उसकी जो निष्ठा है , उसके कारण वह रामदयाल के भाई शीतलप्रसाद से समझौता नहीं कर सकती । यह जानते हुए भी कि रामदयाल अब डूबता हुआ सूरज है , उसकी निष्ठा में एक बाल बराबर भी फर्क नहीं आता । जबकि वह जानती है कि रामदयाल की सारी सम्पति शीतलप्रसाद ने हड़प ली है और धन , वैभव , विलासिता ये सब अब उसके पास है । और शीतलप्रसाद अपने मरणोन्मुख भाई की दूसरी संपत्ति की तरह चम्पाकली को भी अपनी संपत्ति समझता है और कानूनी तौर पर उस पर अपना हक जताता है । उपन्यास के अन्त में वह अपने एक साथी को कहता है —" उत्तम-

सिंह । इस हरामजादी को मैं तुम्हारे सुपुर्द किए जा रहा हूँ । तुम दोनों आदमी महीने भर तक इस बुड्ढी चुड़ैल का नखरा झाड़ते रहो और फिर उसकी नाक और जीभ काटकर भीख मांगने के लिए छोड़ देना । खबरदार इसमें गलती न हो ।" [67]

उपन्यास में तवायफों के सन्दर्भ में कहा गया है — " जो दुनिया भर को बनाये , लेकिन सारी दुनिया मिलकर भी जिसे न बना सके । तवायफ वह परिन्दा है जो किसी फंदे में नहीं फंसता और जिस पे दुनिया के पागल लोग अंधे पतिंगों की तरह खींचकर गिरते जलते हैं ।" [68] वेश्या-जीवन के तमाम आयामों को केन्द्र में रखकर लिखे गए मधु कांकरिया के उपन्यास "सलाम आखिरी " में भी वेश्याओं के संदर्भ में एक कहानी कही गई है । एक वणिक-पुत्र एक वेश्या के प्रेम में पूरी तरह से पागल हो गया था । जब उसके पिता को यह बात ज्ञात हुई तब उसके फंदे से छुड़ाने के लिए एक अच्छी खासी रकम देकर दूसरे प्रदेश भेजने की व्यवस्था करता है । रास्ते में उस कुटनी का घर पड़ता था । जब उसकी पुत्री ने देखा कि उसका प्रेमी तो विदेश जा रहा है तब पहले तो वह बेहोश हो गयी , जब उसे होश में लाया गया तो, सामने एक कुआं था उसमें उसने छलांक मार दी । कुछ तैराकों को कुएं में उतारा गया और उसे बाहर निकाला गया । वणिक-पुत्र मोम की तरह पिघल गया । वह वहीं रह गया । देखते ही देखते जब उसकी संचित पूंजी उड़ गयी , तो उन दोनों ने मिलकर उसे धक्के मारकर बाहर निकाल दिया । जाते-जाते वणिक-पुत्र उनसे पूछता है — " तो फिर उस दिन तुमने कुएं में छलांग क्यों लगायी थी , वह कुआं तो तुम्हारे प्यार की तरह नकली नहीं था , तुम्हारी जान भी जा सकती थी । " तब वे कहती हैं — " अरे वह तो हमारा नाटक था , कुएं में पहले से ही जाल बिछाया हुआ था । " [69] लेकिन एक और कहानी भी प्रचलित है । एक सेठानी और एक वेश्या एक ही मुहल्ले में रहती थीं । वेश्या हररोज देखती थी कि सेठानी तुलसी क्यारे में पानी डालती

है । वेश्या इस दृश्य को खूब ललक और भक्ति-भाव से देखती थी । मन ही मन वह इस प्रकार के जीवन की कामना करती थी और सेठानी के भाग्य को सराहती थी । दूसरी ओर सेठानी ऊपर-ऊपर से तो वेश्या को कोसती थी , लेकिन उसके यहाँ आने वाले मनचलों को वह ललकभरी निगाह से देखती भी थी । कालान्तर में दोनों की मृत्यु हुई । वेश्या स्वर्ग में गयी और सेठानी नरक में क्योंकि वेश्याकर्म करते हुए भी वेश्या मन से , भीतर से , पवित्र थी और सेठानी ऊपर-ऊपर से पतिव्रता का ढोंग करते हुए भी भीतर से कलुषित थी । कहानी की वेश्या एक सती-साध्वी स्त्री प्रमाणित होती है । हमारे आलोच्य उपन्यास की चम्पाकली उस सती-साध्वी वेश्या की तरह है । दिल्ली की गलियों में वह भीख माँगती है , पर अपने मृत प्रेमी-स्वामी के साथ बेवफाई नहीं करती ।

§10§ हिज़ हाईनेस :

"हिज हाईनेस" भी ऋषभचरण जैन का उपन्यास है । उसमें ब्रिटिश समय के राजा-महाराजाओं के विलासी जीवन का चित्रण है । कुछ समय पहले दीवान जरमनीदास नामक एक लेखक ने "महाराजा" और " महारानी" नामक दो किताबें लिखी थीं , जो उस समय की "बेस्ट सेलर्स" किताबों में गिनी जाती थीं । उनमें लेखक ने अपने समय के कई राजा-महाराजाओं के विलासी जीवन के चित्र अंकित किए थे । ऋषभचरण जैन को भी एक लम्बे समय तक देशी नरेशों और उनके अमलों के सम्पर्क में आने का अवसर मिला था , फलतः उनके कई उपन्यासों में हमें देशी नरेशों के कारनामे मिलते हैं । प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने आलमनगर नामक एक देशी रियासत के महाराजा के जीवन की विलासिता , उनकी रंगिनियाँ और उनके चारित्रिक अधःपतन को यथार्थतः चित्रित किया है । अतः प्रत्यक्षतः उपन्यास एक महाराजा , "हिज हाईनेस " , के संदर्भ में है ; किन्तु परोक्ष ढंग से उसमें वेश्याओं का चित्रण हुआ है , क्योंकि महाराजा

नम्बरी ऐयाश और रण्डीबाज है । अपनी रातों को रंगीन बनाने के लिए उन्हें नित्य नवीन अनेक स्त्रियों की जरूरत रहती थी । उसके लिए उन्होंने बाकायदा एक अलग महकमा स्थापित किया था और भास्करदेव नामक व्यक्ति उसे संभालता था । उसका काम महाराजा के लिए सुंदर से सुंदर स्त्रियों और बालिकाओं को जुटाने का था । महाराजा के शौक बड़े विचित्र थे, बल्कि उनको "सेक्सुअली पर्वर्टेड" व्यक्ति भी कह सकते हैं । कई बार वे एक साथ अनेक स्त्रियों से सहवास करते थे । कई बार वे अनेक स्त्रियों व वेश्याओं को नग्न करके मात्र देखते थे । एक बार जब रानी त्रिपुरी (हिज हाईनेस की ब्याहता पत्नी) वहां पहुंचती हैं तो वहां के दृश्य को देखकर उनकी आँखें मारे शर्म के जमीन में गड़ जाती हैं ।

मध्यकालीन युग के महाराजाओं की एक मनोविकृति यह भी होती थी कि वे स्वयं को गोपिकावल्लभ श्रीकृष्ण समझते थे और उनकी तरह रास रचना अपना अधिकार समझते थे । फिलीप रासन द्वारा प्रणीत " इरोटिक आर्ट आफ इण्डिया " में ऐसे अनेक राजाओं के कई सचित्र वृतान्त दिए गए हैं, जिनमें से एक को यहां बतौर उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है । इसमें राजस्थान की "कोटा स्टायल" को लिया गया है, जो उन्नीसवीं शताब्दी में उपलब्ध होती थी । इसमें एक राजकुमार एक साथ पांच सुंदरियों के साथ विहार कर रहे हैं — " द प्रिन्स एनजोयज फाइव आफ हिज विमेन एट वन्स, टू विथ हिज हेण्ड्स, टू विथ हिज फीट, एण्ड वन विथ हिज सेक्सुअल आरगन, थीस मोटिफ वाज़ वेरी कोमन इन इण्डियन इरोटिक आर्ट फ्रोम एटलिस्ट द नाइन्थ सैंच्युरी ए.डी. एण्ड प्रोबेबली अर्लिअर. इट रीप्रेजेण्ट्स एन आइडियल सिच्युएशन इन द पोलिगेमस रायल हाउस होल्ड, इलुस्ट्रेटिंग समथिंग आफ वाट इज़ इम्प्लाइड बाय द डिस्क्रिप्शन आफ रावन्स हरेम कोटेड इन द इण्ट्रडक्शन. इन द कामसूत्र थीस इज़ काल्ड बुल एमोंग काउज़." 70

किन्तु यहां आलमनगर के महाराजा जिन स्त्रियों के साथ यौन-लीला

रखाते हैं , वे उनकी ब्याहता पत्नियां नहीं हैं ।

महाराजा को नित्य नवीन स्त्रियों के संग की आदत पड़ चुकी है । उनके अनेक मुलाजिमों का काम ही यही है कि वे राज्य तथा राज्य की सीमाओं के बाहर से सुन्दर से सुन्दर युवतियों को मुहैया करके महाराजा की सेवा में प्रस्तुत करें । उनके हाली-मवालियों ने उन्हें खुश रखने का यही एक तरीका ईजाद कर लिया है । औरत का उपहार ही सबसे बड़ा उपहार समझा जाता था । स्वयं हिज हाईनेस अपनी इस प्रवृत्ति के संदर्भ में एक स्थान पर कहते हैं —

" कुछ बेचारे जो गरीब थे , बेवकूफ थे और बाहर की औरतों का इन्तज़ाम नहीं कर सकते थे , उन्होंने धीरे-धीरे अपनी सगी-संबंधियों , बहनों , बेटियों , भतीजियों , भांजियों , सालियों , सलहजों और खुद अपनी बीबियों तक को मेरे सामने पेश करना शुरू कर दिया और उन बदनसीब बेचारियों को देखिये कि खुशी-खुशी मेरे आगोश में आकर अपना जन्म सार्थक करने के लिए तैयार होती थीं । जैसा कि मैंने ऊपर कहा मैं उनसे खेलता , उन्हें जैसे चाहता भोगता और बिखेरता और कोई न था जो मेरी हरकतों पर उंगली उठा सकता । मैं राजा जो था , लेकिन इन सबमें बहुत थोड़ी ऐसी सौभाग्यशालियां थीं जिनको एक बार से अधिक मेरी अंकशायिनी बनने का सौभाग्य मिला हो । इसीमें मेरा बड़प्पन था । सभी प्रान्तों और सभी जातियों से मेरा वास्ता पड़ा लेकिन मेरठ की पहाड़नों के अतिरिक्त न तो पूना की मरेठिनें मेरे मन भायीं , न दिल्ली की मुसलमानीनें । बम्बई की गुजरातनों से तो मुझे नफ़रत-सी हो गई थी । और एंग्लोइण्डियन छोकरियों के मुतल्लिक यह संस्कार मेरे हृदय पर जड़ जमा चुके थे कि वे बीमारी के घर हैं ।" 71

इस उपन्यास में छः मुख्य पात्र हैं — हिज हाईनेस , रानी त्रिपुरी , माँ महारानी (राजमाता) , भास्करदेव ,

दीवान बहादुर अमरदास और माणिक सरदार । इनमें से राजमाता, रानी त्रिपुरी और दीवानबहादुर अमरदास हिज हाईनेस को सही रास्ते पर लाने के लिए बहुतेरे प्रयत्न करते हैं, परन्तु हिज हाईनेस की आँखें तब खुलती हैं, जब बहुत देर हो चुकी थी । हिज हाईनेस की ब्याहता पत्नी तो केवल रानी त्रिपुरी थी, शेष औरतें तो उनको भास्करदेव जैसे लोग, उनके अन्य मुलाजिम और वे गरीब लोग सप्लाय करते थे जिनको हिज हाईनेस से अपना कोई काम निकलवाना होता था । हिज हाईनेस का कोई कायमी और रेग्युलर अन्तःपुर नहीं था, उनके ~~xxxxx~~ अन्तःपुर में लड़कियाँ और स्त्रियाँ आती-जाती रहती थीं और उसके लिए उन्होंने बाकायदा एक दफ्तर खोल रखा था जिसका काम ही राजा साहब को नित्य-नवीन "माल" सप्लाय करना था ।

रानी त्रिपुरी को अपने पति के रंग-ढंग बिलकुल अच्छे नहीं लगते और वह तो कबकी आत्महत्या कर लेतीं पर माँ-महारानी और दीवान साहब उनको जब-तब ढाढस बंधाते थे और बाद में एक बच्ची हो गई तो उसका खयाल करके वह मन मसोसकर रह जाती हैं । हिज हाईनेस मायानगरी बम्बई के भी चक्कर काटते रहते हैं और उसमें बम्बई की एक अभिनेत्री के प्रेम में आकण्ठ डूब जाते हैं और उसके कारण वे रानी त्रिपुरी की हत्या का षड्यंत्र भी रचते हैं, किन्तु रानी को इसकी गन्ध आजाती है और वह ऐन मौके पर अपने पिता को बुला लेती है । श्वसुर के आगमन के कारण हिज हाईनेस का वह षड्यंत्र कारगर नहीं हो पाता ।

उपन्यास के अन्त में हिज हाईनेस का मोहभंग होता है । बम्बई की जिस फिल्म-अभिनेत्री को वे अपनी रानी बनाना चाहते थे वही उनको विष देने के कुचक्र में शामिल थी । इसे महाराजा की उदारता ही समझना चाहिए कि फिल्म-अभिनेत्री के इश्क के राज़ का पर्दाफाश होने के बावजूद बक्र वे उसे रुपये और गहनों-कपड़ों से मालामाल

कर देते हैं । पर इस घटना के कारण उनकी आँखें खुल जाती हैं । मां-महारानी की मृत्यु रहस्यमय परिस्थितियों में होती है । हिज हाईनेस अपने कर्तव्यनिष्ठ और वफादार दीवान बहादुर पर राज्य का तमाम उत्तरदायित्व छोड़कर वैराग्य धारण कर लेते हैं । कदाचित् छायावाद के सौन्दर्यवादी कवि जयशंकर प्रसाद की निम्नलिखित पंक्तियाँ उन पर सत्य प्रमाणित होती हैं —

" छलना थी फिर भी मेरा
उस पर विश्वास घना था ;
उस मोहमयी की छाया में ,
कुछ सच्चा स्वयं बना था ।"[72]

§ii§ मयखाना :

ऋषभचरण जैन कृत "मयखाना" प्रकटतः शराबनोशी पर लिखा गया है , किन्तु प्रकारान्तर से उसमें वेश्या-जीवन का चित्रण भी हुआ है । शराबनोशी के साथ जो चीजें जुड़ी हुई हैं उनमें जुआ और रण्डीबाजी मुख्य हैं । बहुत कम ऐसे शराबी मिलेंगे जो शराबी होते हुए कभी वेश्यागामी न हुए होंगे । यहाँ एक प्रसिद्ध कहानी का स्मरण बरबस हो आता है । एक पहाड़ के शिखर पर प्रसिद्ध तीर्थस्थान था । हजारों लोग वहां यात्री के रूप में आते थे । एक बार एक साधु वहां की यात्रा के लिए आया । यात्रा का प्रथम पड़ाव उसने तय किया । उसे बेतहाशा भूख-प्यास लगी । उसने खाना और पानी मांगा । उसे कहा गया कि उसे ये सब मिल सकता है , पर उसके पहले उसे मांस खाना होगा । साधु ने मना कर दिया । भूखा-प्यासा ही आगे बढ़ गया । दूसरा पड़ाव आया । उसे कहा गया कि उसे सबकुछ मिलेगा , पर उसके पहले उसे स्त्री-संग करना पड़ेगा । साधु ने फिर अपना मन पक्का किया और बिना कुछ खाये-पिये ही आगे बढ़ गया । तीसरा पड़ाव आया । उससे कहा गया कि उसको भरपेट खाना-पीना मिलेगा,

लेकिन उसे मदिरा-पान करना होगा । साधु ने सोचा कि उसमें क्या आपत्ति है । थोड़ी मदिरा पीने में हानि ही क्या है ? साधु तो एक के बाद एक तीन-चार जाम शराब चढ़ा गए , फिर उनको खाने में मांस दिया गया , तो वह भी खा गए और रात को उनके पास एक वारांगना को भेजा गया , तो उसके साथ खूब रंगरेलियाँ भी मनायीं । अभिप्राय यह कि शराब पीने के बाद उन्होंने वे तमाम काम किए जिन्हें अपने होशो-हवास में वे नकार चुके थे ।

उपन्यास के प्रारंभ में ही लेखक अपनी प्रस्तावना में लिखते हैं —" मनोरंजन के लिए शराब का जिस मात्रा में और जिस रीति पर प्रयोग किया जाता है , वह हमारे जीवन के प्रत्येक विभाग पर अत्यन्त घातक और विषैला प्रभाव उत्पन्न करता है । फलस्वरूप हमारे सामाजिक जीवन में से दिनों-दिन सच्चाई , सादगी , सच्चरित्रता और अन्य ऊँचे गुणों का ह्रास होता जाता है । ... संसार भर में नैतिकता का जैसा घोर उपहास हो रहा है , उन सबके पीछे शराब का बहुत हद तक हाथ है और संसार के प्राणियों के जीवन में से शराब का अस्तित्व लोप कर दिया जाय तो निःसंदेह दुनिया में अधिक शांति , सुव्यवस्था और संतोष का दौर-दौरा हो जाय ।"[73]

उपन्यास आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया है । इसमें लेखक ने एक रंगीन मिजाज , रहमदिल पर ऐयाश ऐसे एक राजासाहब के जीवन को लिया है । वस्तुतः हमारे तत्कालीन राजा-महाराजाओं जमींदारों , नवाबों और रईसजादों का वह उच्चवर्गीय समाज ही एक किस्म का "मयखाना" है , जिसमें डूबकर लोग अपने होशो-हवाश खो बैठते हैं । उनकी अपनी कोई पहचान नहीं रहती । कदाचित इसीलिए लेखक ने उपन्यास के नायक को कोई नाम नहीं दिया है । प्रस्तुत उपन्यास का नायक एक ऐसा व्यक्ति है जिसने ताजिन्दगी ऐशो-आराम व ऐयाशी के अलावा कुछ नहीं किया । वह स्वयं कहता है —" यों मुझे हररोज एक बोतल व छोकरी की जरूरत

पड़ती है, लेकिन मैं वह आदमी हूं जिसने ज़िन्दगीभर शादी नहीं की, सिर्फ इस खयाल से कि अपने ऐश में फर्क डालना मुझे गवारा न था और एक बेकस लड़की की ज़िन्दगीक को अज़ाब में डालना मेरी गैरत को मंज़ूर न हो सका। कहने को दुनिया मुझे ऐयाश, बदचलन, शराबी, कबाबी सबकुछ कहती है और इस नाचीज़ ज़िन्दगी में मैंने हजारों औरतों से मुलाकात की है; लेकिन मैं तुम्हें यकीन दिलाता हूं मेरी तितली कि कभी किसी भले घर की बहू-बेटी पर डोरे डालने की मैंने कोशिश नहीं की। कभी बलात्कार नहीं किया और ऊपर उठती हुई किसी आत्मा को कभी नीचे गिराने की कोशिश नहीं की।" 74

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि उपन्यास का नायक ऐयाश और शराबी होते हुए भी उदारमना और एक साफगो तबियत का व्यक्ति है। ऐयाश होते हुए भी वह इन्द्रीय-लोलुप लंपट किस्म का व्यक्ति नहीं है। नायक के जीवन में हजारों स्त्रियां - वेश्याएं आती हैं, लेकिन किन्हीं कारणों से गुलबदन उसे और स्त्रियों से अलग लगती है। गुलबदन से वह भावनात्मक स्तर पर जुड़ता है और ऐसे ही भावनात्मक क्षणों में वह उसके सामने खुलता जाता है और उसे अलग-अलग बैठकों में अपनी कहानी सुनाता है। उपन्यास के कथापट का ताना-बाना इसी प्रकार बुना गया है।

उपन्यास के प्रारंभ में ही वह गुलबदन को कहता है —" तुम्हें यकीन दिलाने के लिए मैं वादा करता हूं कि सारी रात एक ही पलंग पर सोकर भी मैं तुमसे सोहबत न करूंगा और तुम यकीन मानो कि अगर तुम कोशिश भी करोगी तो मेरे इस इरादे को तोड़ न सकोगी।" 75 वादे के अनुसार वह दुबली-पतली खूबसूरत लड़की गुलबदन रातभर नायक के साथ एक ही पलंग पर सोयी रही पर नायक है कि एक सीमा के बाद तनिक भी आगे न बढ़ा। यहां "एक सीमा के बाद" शब्दों का साभिप्राय प्रयोग किया है। एक पलंग पर बिल्कुल निष्क्रिय होकर सोये रहना ज्यादा कठिन नहीं है, पर "एक सीमा तक" की छूट भी लेना और फिर भी अपने वादे से टस से मस न होना, यह नायक के गजब के

आत्म-संयम का परिचायक है ।

एक उदारमना व्यक्ति होते हुए भी नायक की इस परिणिति के कारणों की छानबीन लेखक ने की है । उपन्यास का नायक मूलभूत दृष्टि से बुरा आदमी नहीं है, किन्तु परिवेश के प्रभाव, बुरी सोहबत तथा बेतहाशा दौलत के कारण उसका चारित्रिक पतन होता है । बचपन में ही मां की अकाल मृत्यु के कारण मां की ममता का आंचल उसे मयस्सर नहीं होता । पिता पुराने जमींदार है । बेशुमार दौलत है उनके पास, पर अपनी इकलौती संतान के लिए उनके पास समय का नितान्त अभाव है । जिन बच्चों को मां का प्यार नसीब नहीं होता वे जिन्दगी की एक बहुत बड़ी नियामत से महरूम रह जाते हैं । बच्चे को सबसे ज्यादा लाड़-दुलार, प्यार की जरूरत बचपन में ही रहती है । इस समय शिशु रूपी पौधे को प्यार की तरी मिल जाती है, तो उसका जीवन-वृक्ष गहरी जड़ें पकड़ने लगता है और उसका व्यक्तित्व ठोस व पुख्ता हो जाता है । शैशवावस्था में मां की यह कमी कितनी दर्दनाक, कितनी तड़पाने वाली होती है, उसका चित्रण प्रेमचंद ने अपने उपन्यास "कर्मभूमि" के नायक अमरकान्त के माध्यम से किया है —" ज़िन्दगी की वह उम्र जब इन्सान को मुहब्बत की सबसे ज्यादा जरूरत होती है, बचपन है, उस वक्त पौदे को तरी मिल जाय तो ज़िन्दगी भर के लिए उसकी जड़ें मजबूत हो जाती हैं । उस वक्त खुराक न पाकर उसकी ज़िन्दगी खुश्क हो जाती है । मेरी मां की उसी जमाने में देहान्त हुआ और तबसे मेरी रूह को खुराक नहीं मिली । वही भूख मेरी ज़िन्दगी है ।"[76] ध्यान रहे प्रेमचन्द की माता का देहान्त भी जब वे आठ वर्ष के थे, तभी हो गया था और प्रस्तुत उपन्यास के नायक की मां का निधन भी उसके बचपन में ही हो गया था । सुप्रसिद्ध रूसी उपन्यासकार व्लादीमीर नाबाकोव की सुप्रसिद्ध, बहुचर्चित व विवादित औपन्यासिक रचना "लोलिता" के नायक हम्बर्ट हम्बर्ट की मां की मृत्यु भी बचपन में हुई थी और उसकी परवरिश उसके विधुर (widowed) पिता द्वारा

हुई थी । पर तीनों की परिणति अलग-अलग होती है । उपन्यास का नायक शराबी हो जाता है, "लोलिता" का नायक वेश्यागामी हो जाता है; किन्तु सद्भाग्य से (हिन्दी साहित्य के) प्रेमचंद पढ़ाकू होकर उसकी क्षतिपूर्ति करते हैं ।

हररोज शामको रंगीन महफिलें होती थीं, शराब का दरिया बहता था और नायक के पिता तथा उनके मित्र बाजारू औरतों के साथ गन्दे और फूहड़ मजाक करते थे । इसका प्रभाव बिन मां के छोटे बच्चे पर कैसा पड़ सकता है? अतः उस रंगीन "शरबत" का अनुभव नायक को छुटपन में ही हो गया था । नौकर उसे बढ़ावा देते हैं, क्योंकि उसमें उनका अपना भी स्वार्थ था । नायक के पिता को जब नायक की इस स्थिति का पता चलता है, तब तक में बहुत देर हो चुकी थी । उसके पिता उसे एक वैभवशाली बोर्डिंग स्कूल में डाल देते हैं । ~~बक्क~~ बोर्डिंग स्कूल में वह खराब सोहबत में पड़ जाता है । रमाकान्त शराबनोशी और रण्डीबाजी में महारत हासिल कर चुका है । शराब और ~~बेश्वक~~ वेश्याओं की व्यवस्था वह बोर्डिंग में ही करा देता है । लेकिन एक दिन पकड़ा जाता है । उसे बोर्डिंग स्कूल छोड़ना पड़ता है । कुछ दिन तो रमाकान्त के यहां शराब की महफिलों और औरतबाजी में गुजर जाते हैं, लेकिन अंततोगत्वा उसके पिता को उसके ऐसे "चाल-चलन" का पता चल ही जाता है और तब वे उसे रमाकान्त के यहां से अपने घर ले जाते हैं । यहां कुछ नाबदारों से नायक का वास्ता पड़ता है । शराबनोशी और रण्डीबाजी के लिए नायक दुगुनी-तिगुनी रकम के प्रोनोट देकर बेतहाशा पैसा कर्ज पर उठा लेता है । जब लेनदारों के प्रकट तकाजे बढ़ जाते हैं, तब नायक के पिता सही वस्तुस्थिति से वाकिफ़ होते हैं । शराबी-कबाबी होते हुए भी वे खानदानी आदमी थे, अतः वे अपने बेटे का सारा कर्ज चुका देते हैं । इस घटना से नायक शर्मिन्दगी महसूस करता है, उसे अपने किए पर पश्चाताप होता है और वह अपने पिता को वचन देता है कि आइन्दा वह शराब को हाथ तक न

लगायेगा , परन्तु नायक के दुर्भाग्य से उसके पिता का कुछ समय के बाद निधन हो जाता है और उनकी उस अतुलनीय संपत्ति का वह एक मात्र वारिस रह जाता है । कहने-टोकने वाला कोई है नहीं । चारों तरफ चाटुकारों , खुशामदखोरों और टुकड़खोरों का जमावड़ा फिर उसे ऐयाशी के महासागर में डुबो देते हैं । वस्तुतः नायक का दुर्भाग्य यह है कि उसे जीवन में कभी भी किसीका सच्चा , निःस्वार्थ, निर्व्याज प्रेम नहीं मिला । यदि ऐसा प्रेम मिलता तो उसके भीतर की सुचारुता और इन्सानियत रंग लाती । परन्तु उपन्यास के अन्त में गुलबदन के कारण ही नायक के जीवन में परिवर्तन आता है और नायक अपनी संपत्ति का एक हिस्सा एक अच्छे कार्य में लगाता है । वह कार्य है मद्यनिषेध का प्रचार-प्रसार ।

§ 12 § तीन इक्के :
===========

उपन्यास का शीर्षक ही इस बात को संकेतित करता है कि उपन्यास "जुए" से सम्बन्धित होगा । वैसे शराबनोशी , औरतबाजी और जुआ परस्पर जुड़े हुए हैं । इनमें से एक व्यसन का जो शिकार होगा , अन्य दो व्यसन उसमें बिन-बुलाये मेहमान की भांति अपने आप आ जायेंगे । "मयखाना" के नायक की भांति प्रस्तुत उपन्यास का नायक मुरारीलाल भी दिल्ली के एक सुप्रसिद्ध सेठ रायबहादुर श्यामलाल का इकलौता पुत्र है । श्यामलाल का लेन-देन का व्यवसाय है । जी का जेवड़ा करते हुए उन्होंने पुरखों की संपत्ति में खूब इजाफा किया था । श्यामलालजी का दिल्ली के उच्च तबकों में एक निश्चित स्थान है । तभी तो अंग्रेज सरकार ने उनको रायबहादुर के इल्काब से नवाजा था । अपने व्यवसाय की व्यस्तता तथा भलमनसाहत के कारण वे अपने बेटे मुरारीलाल पर अधिक ध्यान नहीं दे पाते । बेतहाशा संपत्ति कई बार कुछ अतिरिक्त बुराइयों को न्यौता देती है । मुरारीलाल के साथ भी यही होता है । संपत्ति का पारावार तथा मां-बाप का झूठा लाड़-प्यार उसे कुसंगति में डाल देता है । जिस

प्रकार "मयखाना" के नायक को रमाकान्त की कुसंगति मिलती है, ठीक उसी प्रकार यहां दयाशंकर घुन की तरह लगा हुआ है। वह मुरारीलाल के व्यक्तित्व को दीमक की तरह चाट लेता है।

उपन्यास के प्रारंभ में ही जुए के अड्डे पर पुलिस की रेड का प्रसंग दिया गया है। इस अड्डे पर कई दिनों से जुए की "फड़" जमी थी। मुरारीलाल इस फड़ में पहली बार सम्मिलित हुआ था। कुछ ही दिनों में वह चार-पांच हजार रूपया हार चुका था और करीब-करीब उतने ही रूपये के प्रोनोट भी दे चुका था। रईसजादों को प्रोनोट पर कर्ज देनेवालों की कमी नहीं होती, क्योंकि कर्ज की अदायगी के संदर्भ में वे निश्चिंत होते हैं। मुरारीलाल जब कई-कई दिनों तक घर नहीं पहुंचा तो घरवालों को उसकी चिन्ता होना लाजमी था, पर बेचारे इज्जत के खयाल से पुलिस में खबर भी नहीं कर सकते। परन्तु मुरारीलाल जब "×× जुए की "फड़" से पकड़ा जाता है; तब रायबहादुर श्यामलाल, मुरारीलाल की मां तथा उसकी पत्नी के पैरों के नीचे से मानो धरती खिसक जाती है। मुरारीलाल की जमानत तो हो जाती है, लेकिन परिवार की इज्जत खाक में मिल जाती है। पुलिस की हिरासत से मुरारीलाल जब घर आता है, तब उसके पिता श्यामलाल उसे समझाते हुए कहते हैं — "हमारे खानदान में कभी किसीने जुआ नहीं खेला। मुनासिब है कि तुम भी उन्हींके चरण-चिह्नों पर चलो। तुम अब बीस पार कर चुके, बराबर के हुए, तुम्हें अब अपने रोजगार की तरफ ध्यान देना चाहिए। मैं बूढ़ा हुआ, न जाने कब चल बसूं।" 77

मुरारीलाल की पत्नी जमना गौनेवाली थी। शर्म का पर्दा पूरी तरह से हट नहीं पाया था। पूरे छः दिन के उपरान्त हिम्मत करके फूट-फूट कर रोते हुए वह पति से केवल इतना पूछ पाती है — "अब तो नहीं खेलोगे?" 78 और मुरारीलाल पत्नी के सामने कसम खाता है कि आइन्दा वह कभी जुआ नहीं खेलेगा। लेकिन मुरारीलाल इन वादों को कभी नहीं निभा पाता, क्योंकि दयाशंकर उसे

जोंक की तरह चिपका हुआ है । जब कोई ऐसी घटना घटित होती है, कुछ दिन के लिए मुरारीलाल अपने इस व्यसन से विरक्त हो जाता है, किन्तु कुछ दिनों के बाद "ढाक के वही तीन पात" वाली कहावत चरितार्थ होती नज़र आती है । जब-जब मुरारीलाल की सद्-वृत्तियां और संस्कार उसे जीवन के उजले पक्ष की ओर ले जाना चाहती हैं, दयाशंकर राहू-केतु की तरह उसके जीवन में आ जाता है और उसे बुरी तरह से ग्रस लेता है । दयाशंकर किस प्रकार अपनी लच्छेदार बातों से मुरारीलाल को अपने चंगुल में फंसाता है, उसका एक नमूना देखिए —

" भै, बात यह है कि लोग शराब भी पीते हैं, तमाशबीनी भी करते है, जुआ भी खेलते हैं और फिर भी किसीको कानोंकान खबर तक नहीं होती । और लोग सच पूछो तो कुछ भी नहीं करते और बद-नाम हो जाते हैं । ... मिसाल के तौर पर अंग्रेजों को ही ले लो । सभी कुछ करते हुँ लेकिन क्या मजाल कि किसीको उंगली उठाने का मौका भी मिल जाए । ... वे लोग सारा काम एक हद तक मैं, एक तरीके पर, एक ढंग से करते हैं । अगर उनकी हद एक पैग की है, तो चाहे रात के दो बजे तक बैठें रहें, एक पैग से आगे नहीं बढ़ेंगे । अगर उन्होंने ताश खेलना शुरू किया तो हद-से-हद दो-चार रूपये की हार-जीत में खेल खतम कर देंगे । और तमाशबीनी ? वह भी इतने बढ़िया ढंग पर होती हैं कि तुम देखा करो । जिन औरतों को तफरीह के लिए बुलाया जाता है, वे सब बासलिका, बातहज़ीब होती हैं और उनके साथ मिलने में, बोलने में, बैठने में हर तरह का लुत्फ मिलता है, और क्या मजाल कि जरा भी शोहदापन आ जावे ।"[71]

इस प्रकार ऊंची सोसायटी और रुतबे की बातें करके वह मुरारीलाल को पुनः गलत रास्तों की ओर मोड़ देता है ।

जुए के साथ वह अब मुरारीलाल को शराब की लत भी लगा देता है । एक दिन मुरारीलाल रात के बारह बजे तक घर नहीं लौटते तो श्यामलाल अपने नौकर गनपत को साथ लेकर ढूंढने निकलते हैं । तब

वह शराब के नशे में झूमता हुआ मिलता है । बुजुर्ग नौकर गनपत की सलाह मानकर वे रात को तो चुप हो जाते हैं । इस घटना के बाद मुरारीलाल का घर से बाहर निकलना कम हो जाता है और कुछ दिनों तक वह अपने घर में ही रहता है ।

तब दयाशंकर एक नयी चाल चलता है । वह गांधीवादी लिबास में आ जाता है और बड़ी चालाकी के साथ शनैः शनैः यह बात प्रचारित करता है कि मुरारीलाल में आमूलचूल परिवर्तन आ गया है और उसका रुझान अब आध्यात्मिकता की ओर हो चला है । अपनी इस चाल को कामयाब बनाने के लिए वह हीरादास नामक एक धूर्त साधु को अपने पक्ष में मिला लेता है । यह हीरादास एक नंबर का नशेबाज और गंजेड़ी है । धर्म की आड़ लेकर वह अनेक गैरकानूनी काम करता है । उसने अपना अखाड़ा जंगल में खोल रखा है । उसमें वह जुए की "फड़" चलाता है । शराब के स्थान पर भांग, चरस और गांजा के दौर चलते हैं । चरस-गांजे के सेवन से मुरारीलाल की आँखें लाल और चढ़ी-चढ़ी-सी रहती हैं, दयाशंकर इसे योगसाधना का परिणाम बताता है । मुरारीलाल की मां को यह बताया जाता है कि मुरारीलाल वशीकरण की विद्या साधने में लगा हुआ है । मुरारीलाल के इस तथाकथित आध्यात्मिक उद्धार की बात से घर-परिवार वाले अत्यन्त प्रसन्न हैं, लेकिन मुरारीलाल की पत्नी जमना चुप्पी साध लेती है, क्योंकि वास्तविक स्थिति का कुछ-कुछ आभास उसे हो चला था । बाबा हीरादास एक बार मुरारीलाल के यहां भी पधारने की कृपा करते हैं । इससे मुरारीलाल की मां तो धन्य-धन्य हो जाती है । धर्म के नाम पर हमारे देश की अशिक्षित या अर्द्ध-शिक्षित जनता को हजारों साल से ठगा जा रहा है । अंधश्रद्धा की सबसे ज्यादा शिकार महिलाएं होती हैं, इसे हम नागार्जुन कृत उपन्यास "इमरतिया" में देख सकते हैं । इसमें कुछ शातिर और बदमाश टाईप की औरतें भी शामिल हो जाती हैं, जो दूसरी भोली-भाली औरतों को फंसाती हैं । महंत हीरादास के अखाड़े में कैसे-कैसे बदमाश आते हैं उसका एक उदाहरण लेखक ने प्रस्तुत किया है । वे सज्जन जुए के तीन फायदे बताते हैं — /1/ पहला लाभ तो यह है

कि दुनिया में जितने तरह के शौक़ और तफ़रीह के जरिये हैं, उन सबमें जुआ ही एक ऐसी तफ़रीह है, जिसमें खर्च किया हुआ तमाम रूपया अपने ही मुल्क में रहता है । /2/ दूसरा लाभ यह है कि जुए में अक्सर बड़े आदमी हारते हैं और इससे इनका रूपया गरीब आदमियों में बँट जाता है और दौलत का "रोटेशन" सोसायटी के हर तबके में हो जाता है । इसीका नाम तो "सोसियालिज़्म" है जिसकी तारीफ़ करते-करते हमारे लीडर थकते नहीं है । /3/ तीसरा लाभ है संगठन का । यानि आप देख लीजिए कि यह शिवाला हिन्दुओं का है, लेकिन यहां मुसलमान भाई भी बैठे हैं, जो घण्टों से यहां बैठे हमारी तफ़रीह में सिरकत कर रहे हैं । वर्ना जनाब शिवाले-मस्जिद की समस्या रोज हिन्दू-मुस्लिम के गले कटवाती है । मतलब यह हुआ की जुए की तफ़रीह में आदमी-आदमी की मुहब्बत इस कदर बढ़ जाती है कि उन्हें इस बात का खयाल ही नहीं रहता कि किसका क्या मज़हब है ?"[80]

लेकिन एक दिन बाबाजी की "फड़" पर भी पुलिस की रेड हो जाती है । पुलिस को उसका हिस्सा कदाचित् नहीं पहुंचाया गया होगा । मुरारीलाल पुनः पकड़े जाते हैं । सेठानी बहुत दुःखी हो जाती है, जमना तो सुनते ही बेहोश हो जाती है और रायबहादुर श्यामलाल के तो प्राण-पखेरू ही उड़ जाता है । मुरारीला को भी बहुत पछतावा होता है । परन्तु कुछ ही दिनों में दयाशंकर जैसे लोगों के कारण उसका वह "स्मशान-वैराग्य" नदारद हो जाता है और अब तो पिताजी का दबाव या डर भी नहीं रहा । व्यावसायिक-यात्रा के बहाने वह मेरठ आदि शहरों के चक्कर दयाशंकर के साथ काटते रहते हैं । इस बीच में रण्डीबाजी और घुड़-दौड़ का एक नया चस्का मुरारी-लाल को लगता है । इन्हीं सब चक्करों में एक दिन एक ठेकेदार के हाथों दयाशंकर का खून हो जाता है । मुरारीलाल भी मौका-ए-वारदात पर पाए जाते हैं । फिर तो पुलिस के अफसरों को चाहिए ? उन्हें तो मुरारीलाल से पैसे ऐंठने का अच्छा बहाना मिल जाता है । रूपये पानी की तरह बहाये जाते हैं । मुकदमे के कारण दिल्ली और मेरठ के

व्यावसायिक तबकों में हंगामा मच जाता है और पीढ़ियों से जमाया हुआ बापदादों का व्यवसाय चौपट हो जाता है। ताश-कौड़ियों के जुए तथा घुड़-दौड़ में मुरारीलाल को जब खतरा दिखने लगा तो तो चाटुकार दोस्तों की रायशुमारी से रातोंरात पैसा कमाने के लिए उसने शेयरों की फटकाबाजी शुरू की। बुढ़िया माँ भी अपने सपूत की इन हरकतों से दम तोड़ देती है। बेचारी जमना मन मसोसकर रह जाती है। एक दिन सारी हशमत और दौलत मय हाट-हवेली के कौड़ियों के दाम बिक जाती है और रायबहादुर श्यामलाल का बेटा मुरारीलाल दर्जन-भर बच्चों के साथ, गरीब बेचारी पत्नी जमना को साथ लिए दिल्ली की एक सड़ी-सी गली में छः रुपये के किराये के मकान में रहने पर मजबूर हो जाते हैं। जमना इस विषण्ण गरीबी में भी कदाचित् गुजारा कर लेती, परन्तु मुरारीलाल अब भी इस उम्मीद में है कि "कभी अच्छा वक्त आयेगा, तो एक ही दाव में उसे फिर वही हशमत और हाट-हवेली नसीब हो जायेगी।"[81] लेकिन क्या उसकी यह आशा पूर्ण होगी ? इस प्रश्न के साथ ही उपन्यास का अन्त होता है।

इस प्रकार प्रकटतः यह उपन्यास जुए से सम्बद्ध है, पर जैसा कि पहले भी निर्दिष्ट किया गया है शराबनोशी, जुआ और रण्डी-बाजी ये सब एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। इस तरह प्रस्तुत उपन्यास में वेश्यावृत्ति आदि का चित्रण तो हुआ है। मुरारीलाल को रण्डीबाजी का चस्का लगता है, उसके बाद ही दयाशंकर का खून हो जाता है। वेश्याओं के अड्डों पर प्रायः इस प्रकार के खून-खराबे होते है। मधु कांकरिया कृत उपन्यास "सलाम आखिरी" में भी एक वेश्या के अड्डे पर खून हो जाने की घटना का जिक्र आया है।[82] हिमांशु श्रीवास्तव कृत "नदी फिर बह चली" में भी उपन्यास का नायक जगलाल वेश्या की एक कोठरी में नशे में धुत होकर अपने एक साथी के पेट में छुरा भोंक देता है और उसे जेल हो जाती है।[83] प्रस्तुत उपन्यास का नायक भी दयाशंकर के खून के सिलसिले में पुलिस द्वारा

धर लिया जाता है, क्योंकि मौका-ए-वारदात पर उसकी उपस्थिति को नोट किया जाता है। इस खून के कारण दिल्ली-मेरठ में जो मकदमे-बाजी चलती है उसके कारण ही नायक बरबाद हो जाता है। इस प्रकार जमना और परबतिया (जगलाल की पत्नी) दोनों की बदहाली का मूल कारण उनके पतियों की रण्डीबाजी ही है। प्रस्तुत प्रबंध में ही जहां वेश्यावृत्ति के दुष्प्रभावों पर प्रकाश डाला गया है, वहां कहा गया है कि वेश्यावृत्ति के साथ शराबखोरी, जुआ, चोरी, डकैती, अपहरण एवं हत्या आदि अपराध जुड़े हुए होते हैं। कई बार तो वेश्यावृत्ति में लिप्त बड़े घर के खानदानी फरजंद ही अपने कर्जों से निबटने के लिए स्वयं अपने अपहरण का षड्यंत्र रचते हैं और फिरौती में अच्छी-खासी रकम की मांग करवाते हैं। जी टी.वी. में हाल ही में प्रदर्शित "बेटियां" धारावाहिक में एक बड़े घर का इकलौता बेटा ऐसा ही करवाता है, जिसमें उसके पिता मरते-मरते बचते हैं। अभी तो यह धारावाहिक चल रहा है, पर लगता है कि उसके नायक का भी वही हश्र होगा जो मुरारीलाल का हुआ है।

(13) प्रेत और छाया :

"प्रेत और छाया" इलाचन्द्र जोशी का एक मनोवैज्ञानिक उपन्यास है। जोशीजी पहले कविता लिखते थे और उनकी छायावादी कविताओं का एक संकलन "विजनवती" नाम से प्रकाशित भी हुआ था। किन्तु बाद में वे कथा-साहित्य की ओर उन्मुख हुए। डा. भारतभूषण अग्रवाल ने उनके संदर्भ में कहा है कि ~~प्रश्न~~ प्राच्य एवं पाश्चात्य साहित्य-परंपराओं का उनका ज्ञान अगाध है। इसके साथ यदि प्रेमचन्द का अनुभव या संघर्ष तथा जैनेन्द्र की दृष्टि उन्हें प्राप्त होती तो हिन्दी के औपन्यासिक साहित्य का गौरव और भी बढ़ाते। उनके उपन्यासों में शास्त्र अधिक होता है, जीवन कम।[84] वैसे तो उनके अधिकांश उपन्यासों में वेश्या-जीवन का चित्रण उपलब्ध होता है, तथापि "प्रेत और छाया" और "पर्दे की रानी" में वेश्या-जीवन का चित्रण विशेष रूप

से उपलब्ध होता है । अपने उपन्यासों के संदर्भ में स्वयं जोशीजी लिखते हैं —" मेरे सभी उपन्यासों का प्रथम उद्देश्य व्यक्ति के अहंभाव की एकांतिकता पर निर्मम प्रहार करने का रहा है । कभी तृप्त न होने वाले अहंभाव की अस्वाभाविक पूर्ति की चेष्टा में जब उसे ‖ पुरुष को ‖ पग-पग पर स्वाभाविक असफलता मिलती है तो वह बौखला उठता है और उस बौखलाहट की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप वह आत्मविनाश की योजना में जुट जाता है । उसकी उस ~~विनाश~~ विनाशात्मक क्रिया का सबसे पहला और सबसे घातक शिकार बनना पड़ता है नारी को ।"[85]

जोशीजी के उपन्यासों की गतिविधि प्रायः यौन समस्याओं को लेकर चलती दिखलाई देती है । "प्रेत और छाया" का कथानक भी यौन-समस्या पर आधारित है । इसका नायक पारसनाथ एक सुशिक्षित व्यक्ति है । उसने एम.ए. तक की शिक्षा प्राप्त की है । उसके पिता उसे यह बतलाते हैं कि वह उनकी संतान नहीं है । वह एक नाजायज़ औलाद है । उसके पिता एक वैद्य है, जिससे उसकी माता के अनैतिक अवैध सम्बन्ध थे । इस बात को सुनकर पारसनाथ अपना मानसिक संतुलन खो बैठता है । अपने जन्म की कलंक-कथा को सुनकर तथा पिता के पाप-कर्मों को प्रत्यक्ष देखकर वह असामान्य ‖ Abnormal ‖ व्यक्ति बन जाता है । इसके कारण स्त्री-जाति को वह नफ़रत और घोर घृणा करने लगता है । फलतः अनेक स्त्रियों के साथ वह यौन-सम्बन्ध स्थापित करता है और फिर उन्हें छोड़ देता है । मनोवैज्ञानिक दृष्टि से वह एक सैडिस्ट और न्यूरोटिक चरित्र बन जाता है । इसी क्रम में उसके जीवन में मंजरी, नन्दिनी और हीरा नामक तीन वेश्याएं आती हैं ।

शिक्षा के प्रचार-प्रसार के कारण जहां एक ओर वेश्या-वृत्ति कम हो गई है, वहां दूसरी ओर एक नयी समस्या का भी जन्म हुआ है, जिसे हम शिक्षित वेश्या कह सकते हैं । "प्रेत और छाया" की मंजरी बी.एस.सी. की तैयारी कर रही है, पर मां की बीमारी और अर्थाभाव के कारण वह होटल में अपने रूप के प्रदर्शन

से आगंतुकों का मनोरंजन के लिए बाध्य हो जाती है । "उस लड़की के प्रवेश करते ही सब लोग अत्यन्त उत्सुक दृष्टि से उसकी ओर देखने लगे । "86 मंजरी को यह सब अच्छा नहीं लगता , पर अर्थोपार्जन के लिए उसे होटल में आने वाले ग्राहकों की तमाम बदतमीजियों को बर्दाश्त करना पड़ता है । एक प्रसंग देखिए : " इंश्योरेन्स कम्पनी का एजण्ट मंजरी के कंधे पर हाथ रखकर बोला : " आप तो कुछ बोलती ही नहीं ? हम लोगों से आप इस कदर नाराज़ क्यों हैं ? " लड़की ने उसका हाथ धीरे से हटाते हुए कहा : " नहीं , नहीं , ऐसा न कीजिए "। उसकी घबराहट इस हद तक पहुंच चुकी थी कि उसके चेहरे से मालूम होता था जैसे वह रो देगी । पर उसके मुख के इस भाव से उपस्थित मंडली के दो रसिक जनों का उत्साह भंग होने के बजाय और अधिक भड़क उठा ।... पर दोनों मित्रों का उत्साह तनिक भी ठण्डा नहीं पड़ रहा था और वे ठौर-कुठौर हाथ फेरते हुए उसे परेशान करने में एक विचित्र विचित्र सुख का अनुभव कर रहे थे ।" 87

पारसनाथ जब मंजरी के संपर्क में आता है तो वह उस पर करुणार्द्र हो उठता है । मंजरी में सभी नारी-सुलभ गुण पर्याप्त मात्रा में विद्यमान थे । वह केवल बीमार मां की सेवा-शुश्रूषा के लिए ही वेश्यावृत्ति जैसा घृणित कार्य करती है । पारसनाथ पर विश्वास करके वह उसके साथ चली जाती है और विवाहिता नारी की तरह ही उसकी गृहस्थी संभाल लेती है । उसकी आंतरिक इच्छा है कि पारसनाथ उससे विवाह करके उसे सामाजिक रूप से ग्रहण करें । लेकिन पारसनाथ मंजरी से यौन संबंध स्थापित करके उसे गर्भवती अवस्था में ही छोड़कर नंदिनी नामक एक दूसरी वेश्या के साथ चला जाता है ।

नंदिनी वेश्या है पर उसमें कुलवधू बनने की प्रबल इच्छा है । उपन्यासकार इस बात पर जोर देता जान पड़ता है कि यद्यपि किसी-न-किसी विवशता के कारण नारी को वेश्यावृत्ति अपनानी पड़ती है पर वह उसको सहज रूप से स्वीकार नहीं करती और उसका मन उस घृणित

जीवन से उबरने के लिए रात-दिन छटपटाता रहता है । स्वयं लेखक उपन्यास में एक स्थान पर कहते हैं — " भारतीय वेश्या के समान करुणाशील और उदार प्राणी का जोड़ मिलना कठिन है । मैं इस ज्वलंत सत्य पर पर्दा नहीं डालना चाहता कि यथार्थ जगत की बहुत-सी वेश्याएं ऊपर से बड़ी लोभी , संकीर्ण हृदय , मूर्ख और घोर स्वार्थी लगती हैं , पर अगर उनके भी बाहरी जीवन का कड़ा चमड़ा चीरकर देखा जाय तो भीतर स्वस्थ प्रेम और सच्ची करुणा के सैकड़ों सोते फूटते हुए दिखाई देंगे ।" 88

प्रस्तुत उपन्यास की नंदिनी यद्यपि वेश्या है , किन्तु वह रात-दिन यही सोचती है कि कोई ऐसा गुणी ग्राहक उसे मिल जाए , जो उसे इस दलदल से निकाल ले जाए । लेखक ने उसके संदर्भ में एक स्थान पर कहा है —" नंदिनी में यह महत्वाकांक्षा वर्षों " से घर किए हुए थी कि किसी कुलीन और सद्गृहस्थ परिवार से सूत्र जोड़े ।" 89 इस प्रबल इच्छा के कारण ही वह भुजौरिया से विवाह करती है । किन्तु जब उसे विदित होता है कि भुजौरिया ने अर्थलाभ की दृष्टि से ही उससे विवाह किया है तो उसका मन भुजौरिया के प्रति विद्रोह कर उठता है । वस्तुतः भुजौरिया नंदिनी से धंधा करवाकर उसकी आमदनी पर ऐश करना चाहता था । नंदिनी जब मोहभंग की स्थिति से गुजर रही थी , तभी वह पारसनाथ के सम्पर्क में आती है । पारसनाथ में वह एक और आश्रयदाता देखती है और पारसनाथ उसे आश्वासन भी देता है । यथा —" मेरा विश्वास करो नंदिनी । मैंने चाहे तमाम संसार के साथ विश्वासघात किया हो , या सारे संसार ने मेरे साथ विश्वासघात किया हो , पर तुम्हारे साथ मैं कभी इस जन्म में विश्वासघात नहीं करूंगा ।" 90

पारसनाथ की बात पर विश्वास करके नंदिनी उसके साथ भाग निकलती है , क्योंकि वह भुजौरिया से छुटकारा चाहती थी । नंदिनी एक स्थान पर इस संदर्भ में कहती है — "भुजौरिया से विवाह किया , पर उस ब्रह्मराक्षस ने भरसक यह चेष्टा

की कि मैं उस विवाहित स्थिति में भी गुप्त रूप से उसके परिचित राजा-रईसों के साथ व्यभिचार का संबंध स्थापित किये रहूं । मेरे मन का और मेरी आत्मा का सब स्निग्ध रस सोखकर, मेरा सारा पार्थिव वैभव — मेरी माँ का दिया हुआ और अपना जोड़ा हुआ रूपया भी उसने हड़प लिया ।" 91

किन्तु स्थिति की विडंबना तो तब सामने आती है, जब पारसनाथ भी उसे छोड़ देता है । पारसनाथ उसे ब्याहता समझकर भगा लाया था, किन्तु उसे जब ज्ञात होता है कि नंदिनी पहले कभी वेश्या रह चुकी है×xx तब नंदिनी में उसकी जो रूचि थी वह समाप्त हो जाती है, क्योंकि उसका न्यूरोटिक अंतर्मन एक ब्याहता को पतिता बनाने में तो प्रसन्न हो सकता है, परन्तु भला एक वेश्या, जो पतिता होती है, उसे पतिता बनाने का आत्मसुख कैसे प्राप्त कर सकता है ? जब नंदिनी इस स्थिति से अवगत होती है, तब उसका अपमानित नारी-हृदय प्रचंड विद्रोह करता है और वह पारसनाथ को खरी-खरी सुनाते हुए वह मानो उसे नग्न कर देती है —" तो क्या तुम अभी तक यह सोचे बैठे थे कि समाज और पति के बंधन में बंधी हुई एक भले घर की बहू को फुसलाकर भगाये लिए जा रहे हो ? ठीक है, यही बात है। एक कुलीन घराने की विवाहिता स्त्री को भगाकर उसका धर्म भ्रष्ट करने में तुम जैसे अधम पुरुषों को जो सुख मिलता है वह किसी वेश्या-समाज की लड़की को (फिर चाहे वह विवाहिता ही क्यों न हो ?) भगाने में कहां मिल सकता है ।" 92

इस प्रकार अपने अनुभवों से नंदिनी इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि वह पतित जीवन से मुक्ति पाने के लिए चाहे कितना भी क्यों न छट-पटाये, पुरुष समाज उसे उबरने नहीं देगा । अपनी विवशता का ध्यान कर पुरुष-समाज पर व्यंग्य करती हुई वह पुनः कहती है —" तुम सब लोग मिलकर जैसे यह षड़यंत्र रचे बैठे हो कि मैं वेश्या-जीवन से मुक्ति पाने के लिए चाहे कितना भी छटपटाऊं, लाख प्रयत्न करूं, पर किसी भी हालत में मैं उस प्रयास में सफल न होने पxxxx पाऊं,

और अन्त में वेश्या की वेश्या ही बनी रहूं ।"[93] और नंदिनी को बाद में सचमुच ही वेश्यावृत्ति स्वीकार करनी पड़ती है । उसका एक गृहस्थिन विवाहिता होने का सपना सपना ही रह जाता है ।

पारसनाथ के सर से यह "प्रेत की छाया" तभी हटती है, जब उसके पिता उसे कहते हैं कि वह सचमुच में उनका ही लड़का है, किसी वैद्य का नहीं, पर अपनी सती-साध्वी पत्नी से बदला लेने के लिए मैंने ऐसा कहा था । इस घटना से पारसनाथ के जीवन में एक मूलभूत परिवर्तन आ जाता है और वह हीरा नामक एक वेश्या से विवाह कर लेता है । यह हीरा नंदिनी की ही बहन है और उसके मन में विवाहित-सम्मानित जीवन जीने की भरपूर ललक विद्यमान थी ।

उपर्युक्त घटना के पश्चात् पारसनाथ जब हीरा के संपर्क में आता है, तब वह हीरा से कहता है —" आपका परिचय मेरे पिछले जीवन की सभी भूलों को धोकर मुझे फिर से कुत्ते से मनुष्य बना सकता है, बशर्ते आपकी कुछ भी कृपा मुझ पर हो ।"[94] तब हीरा का कुचला और अनेकों द्वारा ठुकराया हुआ नारी-हृदय मानो चित्कार कर उठता है और उसके भीतर का अवरूद्ध ज्वालामुखी मानो फूट पड़ता है —" मैं तो नाचीज़ हूं, पारसबाबू, एक तुच्छ और हीन प्राणी हूं । अगर मैं जीवन में आपकी किसी भी सेवा में आ सकी तो अपने को कृतार्थ समझूंगी । भला मैं आपको उबारने की क्या सामर्थ्य रखती हूं ? फिर भी विश्वास रखिये कि मै तन-मन से आपके साथ हूं ।"[95] और हीरा वक्त आने पर सचमुच अपनी बात को निभाती है । जब उसे ज्ञात होता है कि पारसबाबू को पन्द्रह हजार रूपयों की सख्त जरूरत है, तो वह एक क्षण का भी विचार किए बिना पारसबाबू के लिए पन्द्रह हजार रूपयों का प्रबंध कर देती है । ध्यान रहे ये पन्द्रह हजार रूपये सन् 1940 के है, आज सन् 2007 में उसका कितना मूल्य हो सकता है, वह तो कोई अर्थशास्त्री ही बता सकता है ।

उपन्यास के अन्त में जब हीरा का पारसनाथ के साथ विवाह

तय हो जाता है तब उसके मन में कुलवधू के सभी संस्कार जागृत हो जाते हैं और वह एक साधारण गृहिणी की भांति अपने श्वसुर की सेवा करती है और गृहस्थी को सुखमय बनाने की चेष्टा करती है। लेखक की टिप्पणी है — " हीरा अपनी सच्ची सेवाओं से उनकी प्रसन्नता को और अधिक बढ़ाती चली गई। भावी ससुर की सेवा में जो एक विशेष प्रकार का स्निग्ध सुख हीरा को मिल रहा था, उसका अनुभव तो दर-किनार, उसकी कल्पना भी उसने इसके पहले कभी नहीं की थी। उसके हृदय के अतल में युगों से दबे हुए भारतीय कुलवधू के संस्कार जैसे किसी माया-मंत्र से जाग पड़े थे।" 96

इस प्रकार यहां लेखक का वेश्याओं के प्रति दृष्टिकोण काफ़ी सहानुभूतिपूर्ण है। लेखक इस बात को बारंबार कहते हैं कि कोई भी स्त्री अपनी मर्ज़ी से वेश्या का व्यवसाय नहीं अपनाती है, बल्कि उसे वेश्या बनाया जाता है और फिर उस व्यवसाय को अपनाने के अलावा कोई दूसरा चारा नहीं रह जाता है। दूसरी बात लेखक ने जो कही है वह उसके सुधार और विस्थापन की और लेखक ने यह बताया है कि यदि कोई व्यक्ति वेश्या को अपनी विवाहिता के रूप में स्वीकार करता है, तो वह एक अच्छी गृहिणी भी हो सकती है।

§।5§ पर्दे की रानी :

"पर्दे की रानी" में जोशीजी ने वेश्यावृत्ति की समस्या के मनोवैज्ञानिक पक्ष को प्रस्तुत किया है। उपन्यास की नायिका निरंजना स्वयं वेश्या नहीं है, परंतु वेश्या-पुत्री होने के कारण उसके चेतन-अवचेतन मन के घात-प्रतिघात उसके जीवन को निष्फल और दुःखी बना देते हैं। एक मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार होने के नाते जोशीजी यहां निरंजना के अन्तर्मन के अन्तर्द्वन्द्व का विश्लेषण भलीभांति कर पाए हैं। निरंजना की मां एक वेश्या थी। मरते समय वह अपनी पुत्री निरंजना को मनमोहन नामक एक व्यक्ति को सौंप जाती है। मनमोहन भी अपना वादा

निभाते हैं और शुरू में तो पुत्रीवत् ही उसका लालन-पालन करते हैं, परन्तु जैसे ही वह सोलह साल की आयु पार करती है, उसके साथ के उनके व्यवहार में फरक आ जाता है। वे उसे छात्रावास में रखते हैं और अपनी लड़कियों को उसके पास फटकने भी नहीं देते हैं। सोलह साल तक तो मनमोहन उसे सभ्य बालिकाओं की तरह पालित-पोषित करते रहे, किन्तु उसके बाद उनकी दृष्टि में निरंजना के प्रति एक प्रकार का आकर्षण जाग्रत होने लगा, जिसके वशीभूत होकर एक बार तो वे निरंजना के सामने अश्लील प्रस्ताव तक रखते हैं।

मनमोहन का पुत्र इन्द्रमोहन विलायत से लौटकर आता है, तो उसकी लोलुप दृष्टि भी निरंजना पर पड़ने लगती है। एक बार होटल में शराब के नशे में उन्मत्त होकर वह निरंजना के शरीर को अपनाने का प्रयत्न करता है। निरंजना जब छात्रावास में चली जाती है तब इन्द्रमोहन और उसके बीच स्वाभाविक प्रेमांकुर फूटने लगता है। परन्तु निरंजना का कर्तव्य-बोध और विवेक आड़े आ जाता है। वह अपनी अभिन्न सखी शीला के साथ विश्वासघात नहीं करना चाहती, क्योंकि शीला इन्द्रमोहन को प्यार करती है। इन्द्रमोहन किसी प्रकार निरंजना को पाना चाहता है, उसके शरीर को भोगना चाहता है। फलतः वह निरंजना से झूठ बोलता है कि हृदयगति बन्द हो जाने से शीला की मृत्यु हो गई है। नेपाल जाते हुए रेलगाड़ी में इन्द्रमोहन निरंजना के कौमार्य को नष्ट करता है। इस प्रकार यहां हम देखते हैं कि बाप-बेटे दोनों की दृष्टि निरंजना पर है। जोशीजी एक प्रकृतवादी उपन्यासकार हैं और वे मानते हैं कि रति के संदर्भ में मनुष्य और पशुओं में कोई अंतर नहीं है।

उपन्यास में लेखक ने निरंजना के माध्यम से खूब मनोविश्लेषण किया है। आधुनिक शिक्षित युवती होने के उपरान्त भी निरंजना में कुछ ऐसे संस्कार हैं जो उसे अपनी वेश्या माता से प्राप्त हुए हैं। वेश्या-वृत्ति नीच, पतित और जघन्य कार्य है, इस बात को जैसे सभ्य और कुलीन समाज समझता है, वैसे ही वेश्या भी समझती है। इसी

कारण उसके मन में हीन-भावना (inferiority Complex) घर कर लेती है । उसकी यह हीन-भावना कभी आत्मग्लानि के रूप में, कभी समाज के प्रति विद्रोह के रूप में, तो कभी-कभी अपने आपको निर्दोष प्रमाणित करने के रूप में दिखाई देती है । इलाचन्द्रजोशी मनोविश्लेषणवादी उपन्यासकार हैं । उनका मत है कि वेश्या में ही नहीं वेश्या-पुत्री में भी परोक्ष रूप से हीन-भावना निहित रहती है । प्रस्तुत उपन्यास में जोशीजी ने निरंजना के चरित्र में मनोविश्लेषणात्मक पद्धति से यही चित्रित किया है कि वेश्या-पुत्री होने के कारण निरंजना इस भावना से कभी मुक्ति नहीं पा सकी । अपनी इस भावना से उबरने के लिए वह अहं का सहारा लेती है और इन्हीं दो तत्वों की कशमकश के कारण उसको जीवन में कभी भी सामंजस्य और शान्ति के दर्शन नहीं होते । कभी वह अत्यधिक दयनीय दिखाई पड़ती है, तो कभी अत्यधिक उच्छृंखल । अहं के कारण वह एक तरफ दूसरों को चिढ़ाने और जलाने में अपार सुख का अनुभव करती है, तो दूसरी ओर अपनी हीन-भावना के कारण आंतरिक वेदना से भी विकल होती रहती है । अपने मन के इस विरोधाभास से निरंजना स्वयं भलीभांति परिचित है । एक स्थान पर वह कहती है —

" मेरे भीतर कई विरोधाभास वर्तमान हैं, मुझे ऐसा लगता है । कभी-कभी मुझे यह अनुभव होने लगता है मेरे मन के मूल केन्द्र के ऊपर बहुत-से चित्र-विचित्र संस्कारों के स्तर के एक के ऊपर एक सिलसिले में जमे हुए हैं और उनमें से प्रत्येक स्तर के तत्व किसी दूसरे स्तर के तत्वों से मेल नहीं खाते । उन सब स्तरों के नीचे मेरा मूल स्वभाव भयंकर भार से दबा पड़ा है ... मेरी यह मूल प्रवृत्ति कभी भीषण ज्वालामुखी के समान आग के फव्वारे छोड़ती है, और कभी स्निग्ध-शीतल जलधारा बरसाती है । पर मैं न पहले का कारण जानती हूं न दूसरे का । मैं अपने भीतर के विचित्र संस्कारों की क्रिया-प्रतिक्रिया की एक कठपुतली मात्र हूं ।" 97

उपर्युक्त हीनता-बोध, एहसासे कमतरी, के कारण ही

निरंजना के मन में पुरुष समाज के प्रति प्रतिहिंसा का भाव उत्पन्न होता है जो वेश्यावृत्ति को घृणित मानकर भी स्वयं उसके प्रचलन में सहायक होता है और फिर भी समाज में नैतिकता और उच्चता का दावा करता है । उपन्यास में एक स्थान पर कहलवाया गया है —" इसका कारण क्या स्पष्ट ही यह नहीं है कि एक पुरुष की हैसियत से किसी भी नारी के साथ रस-रंग की बातें करना अपना जन्म-सिद्ध अधिकार समझता है ; और यह भी जानता है कि जिस लड़की के यहां आने-जाने से उसकी बहनों की सामाजिक सत्ता घट सकती है , उसके यहां स्वयं डटकर जल-पान करने , चाय पीने और पहली ही मुलाकात में बेतकल्लुफ़ प्रेम-चर्चा चलाने से समाज में उसका सम्मान घटने के बजाय बढ़ सकता है ?" 98

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि हीनता-बोध और प्रतिहिंसा की इस द्विधा में यदि एक तरफ निरंजना इन्द्रमोहन के प्रति प्रबल वेग से आकर्षित होती है , तो दूसरी तरफ अपने रूपाकर्षण उसे तड़पाते रहने में उसे एक विशेष प्रकार का लुत्फ़ मिलता है । जब इन्द्रमोहन उससे नुमाइश देखने की बात करता है , तो बिना किसी हिचक या झिझक के वह खुशी-खुशी तैयार हो जाती है उसके साथ जाने के लिए । इतना ही नहीं बल्कि खूब साज़-श्रृंगार भी करती है । यथा —" बढ़िया-से-बढ़िया लोशन , क्रीम , पाउडर , लिपस्टिक आदि श्रृंगार-सामग्री , जो मेरे पास पड़ी हुई थी , और जिसका उपयोग मैं इतना कम करती थी कि वह नहीं के बराबर था , निकालकर मैंने बड़े यत्न के साथ श्रृंगार किया ।" 99

नुमाइश में अपने रूप के प्रति इन्द्रमोहन की तीव्र आसक्ति देखकर तथा भीड़ में सब लोगों के लिए आकर्षण का केन्द्र बनने पर वह गर्व एवं उल्लास का अनुभव करती है । उसे यह सब बहुत अच्छा लगता है । उसके इस प्रकार के व्यवहार के कारण ही इन्द्रमोहन उसे खाना खाने के बहाने से होटल ले जाता है और वहां आसक्ति के चरम क्षणों में इन्द्रमोहन उसके साथ कुछ अनुचित या अभद्र-सा व्यवहार करता है । परन्तु तब निरंजना के नारी-सुलभ संस्कार जाग्रत हो जाते हैं और वह

वहां से भाग खड़ी होती है । उसके इस अन्तर्विरोधी व्यवहार के संदर्भ में वह स्वयं कहती है —" मेरे भीतर वेश्या के संस्कार पूर्ण मात्रा में वर्तमान हैं । यदि ऐसा न होता तो इन्द्रमोहनजी को अपनी भाव-भंगिमा से उस तरह रिझाने की चेष्टा न करती और उन्हें इच्छानुसार नचाकर अकारण परेशान करने पर उतारू न होती , नुमाइश में उनके साथ अकेले जाने के लिए तैयार न होती और होटलवाली घटना और उसके बाद-वाली दुर्घटना का कारण न बनती । निश्चय ही एक वेश्या की मैं अधम लड़की हूं ।" 100

उसके मन की दूसरी प्रवृत्ति (अर्थात् इन्द्रमोहन के आगे बढ़ने पर भाग निकलने की प्रवृत्ति) का विश्लेषण करते हुए उसके गुरूजी कहते हैं —" जो व्यक्ति तुम्हारा रक्षक बनकर भी भक्षक बनने पर उतारू था , तुम्हें एक वेश्या की बेटी समझकर अत्यन्त हीन दृष्टि से देखता था (अपनी लड़कियों तक को उसने कभी तुम्हारे पास नहीं आने दिया) और साथ ही तुम्हारे सौन्दर्य के प्रति आकर्षित होकर छल , बल और कौशल से तुम्हारा कौमार्य नष्ट करने की प्रबल इच्छा रखता था , उसके लड़के के भीतर लालसा की आग भड़काकर उसे जीवनभर अशान्ति की आंच में तड़पाते रहने की प्रवृत्ति जाने या अनजाने में तुम्हारे भीतर घर कर गई थी ।" 101

अपने मन की उपर्युक्त प्रवृत्ति के कारण ही इन्द्रमोहन की पत्नी और अपनी सहेली शीला को अकेली छोड़कर इन्द्रमोहन के साथ पैलेडियम में नाच देखने जाती है , कैम्प्टी फाल्स की सैर करने जाती है , "सैवाय" होटल में नृत्य-गीत में भाग लेती है और स्वयं उन्मादिनी बनकर इन्द्र-मोहन के साथ नृत्य करती है । वह स्वयं इकरार करती है —" मैं जैसे जानबूझकर उन्मादिनी बनी हुई थी , और उस क्षणिक रंग में अपने को पूर्णतया रंगाकर इन्द्रमोहनजी की मस्ती को सुलगा रही थी ।" 102 यहां निरंजना की तुलना रक्तिका (सूरजमुखी अंधेरे के – कृष्णा सोबती) और रधिया (बुधुआ की बेटी – पांडेय बेचैन शर्मा उग्र) के साथ करने

की एक सहज इच्छा हो रही है । रक्तिका युवकों को अपने अद्वितीय सौन्दर्य से आकर्षित करती है और ऐन मौके पर उनसे विरत हो जाती है, उसके भीतर का सारा उत्साह ठण्डा पड़ जाता है । वस्तुतः वह फ्रिजिडिटी की शिकार है । बचपन में हुए बलात्कार के कारण वह "क्लाइमेक्स" पर आते-आते एकदम ठण्डी पड़जाती है । जबकि निरंजना के साथ ऐसा नहीं होता । वह इन्द्रमोहन को आकर्षित करती है, उसके साथ खूब संवनन करती है और ऐन मौके पर उसे तड़पता हुआ छोड़कर भाग खड़ी हो जाती है ।जबकि रधिया ये सब एक योजना के तहत करती है । पुरुषों के प्रति प्रतिशोध भावना से प्रेरित होकर वह उनको तड़पा-तड़पा कर पागल बना देना चाहती है ।

निरंजना के चरित्र में लेखक ने एक और मनोविश्लेषणात्मक तत्व को भी संलग्नित किया है । वेश्या की पुत्री होने के सबब उसे समाज से जो अपमान मिलता है उसके कारण उसके अवचेतन मन में अपनी मां के प्रति विरोध की भावना घर कर जाती है । उसका अवचेतन मन स्नेहमयी शीला को मां के प्रतीक के रूप में ग्रहण करता है, इसलिए उसके मन में शीला के प्रति एक ओर प्रगाढ़ स्नेह-भावना और ममत्व है तो दूसरी ओर उससे प्रतिशोध लेने को भावना भी निहित है । एक स्थान पर निरंजना इन्द्रमोहन से कहती है —" जब तक शीला जीवित है तब तक आप मुझसे हर्गिज इस तरह की कोशिश न करें ।"[103] जब वह ऐसा कहती है, तब एक तरह से उसके मन में प्रतिहिंसा की भावना ही प्रमुख होती है । इस भावना का भलीभांति विश्लेषण करते हुए गुरुजी कहते हैं —" चूंकि तुम्हारी माता समान ही स्नेहशील शीला को तुम्हारे अन्तर्मन ने माता के प्रतीक के रूप में ग्रहण किया होगा, इसलिए उसके विरूद्ध तुम्हारा वह विद्रोह और हिंसा-भाव पूर्ण रूप से कारगर हुआ ।"[104]

इस प्रकार इलाचन्द्र जोशी ने "पर्दे की रानी" उपन्यास में वेश्यावृत्ति की समस्या के मनोवैज्ञानिक पक्ष को चित्रित किया है ।

यहां उपन्यास की नायिका निरुंजना स्वयं वेश्या नहीं है, किन्तु वेश्या-पुत्री होने के कारण उसके चेतन-अवचेतन मन के घात-प्रतिघात उसके जीवन को निष्फल और दुःखी बना देते हैं। निरुंजना के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के लिए लेखक ने गुरुजी के पात्र का सृजन किया है।

§15§ घरौंदे :
==========

डा. रांगेय राघव के "घरौंदे" उपन्यास में भी वेश्या-जीवन के कतिपय पक्षों को उजागर किया गया है। उपन्यास का परिवेश तो विश्वविद्यालय और उसके छात्रावासों तक सीमित है। इसमें जहां एक तरफ नादानी नामक वेश्या के द्वारा वेश्या-जीवन के प्रकट रूप को दर्शाया है, वहां आधुनिक समाज की प्रच्छन्न वेश्यावृत्ति को भी चित्रित किया है। प्रोफेसर मिश्रा बड़े-बड़े अधिकारियों के पास लड़कियां भेजकर अपना उल्लू सीधा करता रहता है। इस प्रकार प्रोफेसर मिश्रा को हम एक सुशिक्षित दलाल या भड़वा कह सकते हैं। उसे इस बात का मलाल है कि यदि उसकी पत्नी में कुछ ढंग होता तो वह कबका कालेज का प्रिंसिपल हो गया होता। प्रोफेसर मिश्रा के लिए अध्यापक का पवित्र व्यवसाय लड़कियों को फंसाने का व्यवसाय है। वेश्याओं के उन अशिक्षित या अर्द्ध-शिक्षित गरीब दलालों या भड़वों को तो कोई एक बार माफ भी कर दे, पर प्रोफेसर मिश्रा जैसे भड़वों को क्या क्षमा किया जा सकता है? वह कालेज में कम पढ़ाता है, लेकिन लड़कियों को अपने बंगले पर पढ़ाने के लिए बुलाता है। इनमें से कुछ लड़कियों को वह कालगर्ल या होटल-गर्ल बनाने में सफल हो जाता है। कुछेक के साथ वह स्वयं भी शारीरिक संबंध स्थापित करता है। लवंग नामक एक विधवा लड़की अपनी हाजिरी बनवाने के लिए प्रोफेसर मिश्रा के साथ व्यभिचार करती है और एक बार श्रीमती मिश्रा द्वारा वह रंगे हाथ पकड़ी भी जाती है, लेकिन प्रोफेसर मिश्रा ढीठ है। पहले चोरी-चोरी खेलते थे, अब खुले आम खेलने लगे।

उपन्यास में विश्वविद्यालय, उसमें चलने वाली राजनीति, चुनावों के घात-प्रतिघात, तत्कालीन सामाजिक-राजनीतिक जीवन के चित्र आदि बहुत कुछ है, लेकिन समाज में प्रच्छन्न रूप से चलने वाली और पनपनेवाली वेश्यावृत्ति भी है। हमारी निस्बत केवल उसी पक्ष से है।

"घरौंदे" में नादानी नामक वेश्या का चित्रण प्रत्यक्षतः हुआ है। वह आधुनिक युग की एक जागरूक वेश्या है। वह अपनी पतितावस्था के प्रति सजग है। उसकी ऐसी स्थिति क्यों है, उसके मूल में क्या कारण हैं, इन सबको वह भलीभांति समझती है। उपन्यास में एक स्थान पर नादानी अपनी स्थिति का परिचय देते हुए कहती है —" बरसात में गन्दी नलियों में बहते पानी को एक गड्ढे में जमा करना जरूरी हो जाता है, वैसे ही तुमने मुझे बना रखा है, तुमने मच्छरों की भन-भन सुनकर पैर दूर-ही-दूर रखा।" 105 नादानी के मन में इस बात का भी विद्रोह है कि जिस पुरुष की काम-वृत्ति को तृप्त करने के लिए उसे यह नीच और पतित काम करना पड़ता है, वह तो समाज में नीच नहीं माना जाता। वह तो बड़ा इज्जतदार और प्रतिष्ठित माना जाता है और उसकी उस नीचता को परिपोषित करने वाली उस जैसी स्त्री को नीच माना जाता है। पुरुष के इस अन्याय से व्यथित होकर नादानी कहती है —" तुम नदी में नहाते हो, मगर तुम तो गन्दे नहीं होते, उल्टे बहने वाली नदी गन्दी हो जाती है? क्या न्याय है तुम्हारा? और पाप को दूसरों पर मढ़ने के लिए शहर भर के गन्दे नालों को नदी में लाकर छोड़ने का प्रयत्न करते हो।" 106 पुरुष की इस स्वार्थ-परता और आत्म-दमन के प्रति व्यंग्य करते हुए नादानी कहती है —" तुम स्त्री को दासी बनाना चाहते हो? हमारी चीख में तुम्हारा समाधान है, हमारी हंसती सिसक में तुम्हारी विजय। हम अपराध सहती हैं, स्वयं रो लेती हैं, इसलिए कि पाप से घृणा करती हुई भी आगे आती हैं। अपराध स्वीकार कर देने पर भी, किन्तु होती हैं हम ही अधिक अपराधिनी। पुरुष की भूल की भांति नारी की भूल क्षणिक नहीं होती।" 107

इस तरह हम अनुभव करते हैं कि "घरौंदे" की नादानी सामाजिक रूप से चेतना-संपन्न और जागरूक वेश्या है । उसने प्रेमचंदजी का "सेवासदन" उपन्यास भी पढ़ रखा है । वह वेश्याओं के भविष्य के लिए भी चिंतित है । इस सम्बन्ध में वह "सेवासदन" के लेखक से मुलाकात भी करना चाहती है । समाज के अनाचारों के प्रति नादानी का आक्रोश और समाज के दुहरे व्यवहार तथा दुहरे मानदण्डों को लेकर उसकी वाणी में जब-तब व्यंग्य उभर आता है । वह अपने प्रेमी कामेश्वर पर व्यंग्यात्मक प्रहार करते हुए कहती है — " रंडी किसीकी रिश्तेदार ×××× नहीं होती है । वह तुम्हारी लड़की नहीं होगी । वह सिर्फ मां को जान सकेगी । पन्द्रह साल की ही बात है । आना फिर तुम्हारी लड़की भी जवान हो जायेगी ।" 108

और नादानी जैसी वेश्याओं के पास साधारण लोग ही नहीं जाते । जो समाज के नेता हैं, जिनके हाथ में समाज की बागडोर है, वे भी अपनी वासना-तृप्ति के लिए उसके यहां जाने से हिचकते नहीं है । मन्मथनाथ गुप्त द्वारा लिखित " अवसान" उपन्यास की वेश्या मुनिया बिलकुल सही कहती है — " उसके पास आता कौन नहीं था ? कांग्रेसी, लीगी, वकील, मौलवी, मास्टर, समाज के सभी तरह के लोग । " 109

§16§ कब तक पुकारूं :
================

जहां डा. रांगेय राघव का "घरौंदे " नगरीय जीवन को लेकर है, वहां प्रस्तुत उपन्यास " कब तक पुकारूं " ग्रामीण परिवेश को मुख्यतः सामने लाता है । उपन्यास राजस्थान और ब्रज की सीमा पर बसे गांव और वहां के लोगों के अज्ञान, अशिक्षा, अन्धविश्वास, गरीबी और उनके शोषण को, उनके रीति-रिवाजों और परंपराओं के माध्यम से यथार्थ रूप में पाठकों के सामने लाता है । जिस प्रकार नागार्जुन ने "वरुण के बेटे " में मछुआरों की जिन्दगी के दस्तावेज़ को प्रस्तुत किया है, ठीक उसी प्रकार यहां डा. रांगेय राघव ने करनटों के जीवन को

उनके यथार्थ स्वरूप में, उनके आर्थिक-लैंगिक शोषण व उनके सामाजिक पतन के साथ चित्रित किया है। उपन्यास के संदर्भ में डाक्टर साहब लिखते हैं — "इस कथा की वर्णनात्मकता मेरी है परन्तु तथ्य उसी [सुखराम] के दिये हुए हैं।" 110 इससे यह प्रमाणित होता है कि रांगेय राघव ने एक सुनी हुई कहानी के आधार पर यह उपन्यास लिखा है। औपन्यासिक आलोचक हेनरी जेम्स के अनुसार उपन्यास लेखक के प्रत्यक्ष एवं व्यक्तिगत अनुभव का चित्रण होती है। 111 किन्तु यहां जो शब्द हैं — "वर्णनात्मकता मेरी है" — पर ध्यान देना चाहिए। इसकी वर्णनात्मकता की यथार्थता के लिए डाक्टर साहब ने पर्याप्त अन्वेषण किया ही होगा।

उपन्यास का नायक सुखराम कहता है — "ये दुनिया नरक है। हम गन्दे कीड़े हैं। तूने यह संसार ऐसा क्यों बनाया है, जहां आदमी कटता है तो इसके लिए दर्द तक नहीं होता। यहां पाप इतना बढ़ गया है कि गरीब और कमीना आदमी कोढ़ी बनकर अपने पेट के लिए अपनी अच्छी देह को गन्दा बना लेता है। यहां एक आदमी देवता है; पर हम तो कमीन हैं। वो बड़े लोग क्यों करते हैं ऐसा ? क्या वे अपना धन और हुकूमत के लिए आदमी पर अत्याचार करने में नहीं कांपते ? तू चुप है। तू जवाब नहीं देती। नट की छोरी पर जवानी आती है और गन्दे आदमी उसे बेइज्जत करते हैं, फिर भी वह रंडी की तरह जिए जाती है। मर क्यों नहीं जाती ? हम सब मर क्यों नहीं जाते ?" 112

यहां पर जो मानवीय सामाजिक दृष्टि रांगेय राघव के पास है, वह शोषित वर्ग के उत्पीड़न को बहुत ही सशक्त ढंग से हमारे सामने लाती है। उपन्यास में शोषण का त्रिकोणात्मक रूप हमारे सामने आता है। गरीब और कमीन लोगों का सामंतों व जमींदारों तथा सेठ-साहुकारों द्वारा शोषण, पुलिस द्वारा इन लोगों का शोषण और अन्ततः अंग्रेजों द्वारा पूरे देश का शोषण। डा. एन.एस. परमार ने इस उपन्यास के संदर्भ में लिखा है — "करनटों को एक जरायम पेशा

कौम माना जाता है । पुरुष दिन में खेल-तमाशे दिखाते हैं और रात में चोरी-चकारी करते हैं । इसमें इनकी स्त्रियाँ भी सहायक होती हैं । गाँव में जमींदारों , मुखियाओं तथा पुलिस के दारोगा जैसे अधिकारियों से उनके यौन सम्बन्ध होते हैं और इस जाति की चेतना इतनी हर ली गई है कि उनके पुरुषों को भी इस घृणित कार्य में कोई अनौचित्य नहीं दिखता है ।"[113] पुरुष तो पुरुष कर्नट स्त्रियों को भी इसमें कोई लाज नहीं आती है । उसे वे अपना काम समझती हैं । कर्नट स्त्रियाँ सामाजिक वर्जनाओं को नहीं मानतीं । सतीत्व का भी कर्नट स्त्रियों में कोई मूल्य नहीं है । एक स्थान पर प्यारी सुखराम से कहती है — " देख , मैं बैगिन -चमारिन नहीं जो मरद की गुलाम बनकर रहूं । मै तो खेलूंगी । पर मेरा मन तो तेरा है । जिस दिन मन तुझसे हट जायेगा , मैं तुझे छोड़कर चली जाऊंगी ।"[114]

उपन्यास में कर्नट स्त्रियों के यौन-शोषण की यथार्थ चर्चा मिलती है । एक तरह से कर्नट-स्त्रियों का जीवन वेश्या के समान ही होता है । एक समय खेल-तमाशा दिखाते हुए सुखराम की पत्नी प्यारी पर दारोगा का दिल आ जाता है और उसकी ओर से प्यारी के लिए बुलावा आ जाता है । सुखराम और कर्नटों जैसा नहीं है , अन्यथा इस बात को लेकर तो कोई भी कर्नट-स्त्री गौरव का अनुभव कर सकती है । प्यारी सुखराम के डर से इन्कार कर देती है , फलतः दारोगा का कहर कर्नटों पर टूटता है । तब प्यारी की मां प्यारी को समझाती है —" अरी यह तो औरत का काम है , उसे बताने की जरूरत ही क्या है ? उसमें भला-बुरा क्या ? कौन नहीं करतीं ?"[115] अभिप्राय यह कि कर्नट स्त्रियों को इसमें आपत्तिजनक कुछ भी नहीं लगता । सुखराम के अलावा दूसरे कर्नट-पुरुषों को भी कोई खास आपत्ति नहीं होती है । आपत्ति करके भी वे बेचारे कुछ कर नहीं पाते । सुखराम के प्रतिरोध के कारण पुलिस द्वारा उसकी बहुत पिटाई होती है । पुलिस की मार से वह बेहोश हो जाता है । प्रातः उसके सिर में खून के चकत्ते देखकर

प्यारी अपनी मां सोनू से कहती है, तब सोनू की जो प्रतिक्रिया है वह अत्यन्त ही साधारण है, जैसे कुछ हुआ ही न हो। यथा — "हां री, जूते में कीलें रही होंगीं। तेरे बाप को ऐसे बीसियों निशान पड़े होंगे।"[116] इस प्रकार यहां बताया गया है कि कर्नट-पुरुष यदि स्त्री की इज्जत बचाने का यत्न करता है तो उसकी बेतहाशा पिटाई होती है। सोनू इसी संदर्भ में कहती है — "औरत का काम औरत का काम है। इसमें भला-बुरा क्या? नहीं तो मार-मार कर खाल उधेड़ देगा दारोगा। और तेरे बाप और सुखराम दोनों को जेल भेज देगा। फिर कमेरा न रहेगा तो क्या करेगी? फिर भी पेट भरने के लिए यही तो करना होगा?"[117] मां की बातों को मानकर प्यारी सुखराम को समझाती है — "तू बुरा क्यों मानता है? औरत के काम में औरत को शरम नहीं होती? मरद के काम से क्या मरद शरम करता है? मेरी-तेरी चाहना है। संग तो तेरे ही रहूंगी।"[118]

उपन्यास में सुखराम दूसरे कर्नटों जैसा क्यों नहीं है, उसके कारणों की भी तलाश है। वस्तुतः सुखराम के दादा एक ठाकुर थे और वंशच्युत होकर कर्नट हो गए थे। अतः सुखराम भी स्वयं ठाकुर ही समझता है और कर्नटों की जिन्दगी को नफ़रत की निगाह से ही देखता है। माता-पिता के काल-कवलित हो जाने पर सुखराम सोनू-इशिला के परिवार में पलता है। प्यारी की मां सोनू एक स्थान पर सुखराम के संदर्भ में शिकायती टोन में इशिला को कहती है — "वह शराब पीता है तो पीते में दिपक जाता है। किसी भी लड़की के साथ एक दिन भी नहीं पाया गया। कौन-सा जवान है जो यह नहीं करता। वह गाली भी नहीं देता जो मर्दानगी की निशानी है। चोरी वह नहीं करता, जुआ वह नहीं खेलता।"[119] कर्नट-समाज में इन मूल्यों की कोई कीमत नहीं, बल्कि उनको उनके समाज में अप-मूल्य समझे जाते हैं। सोनू के हिसाब से तो सुखराम मर्द नहीं है।

उपन्यास का फलक बहुत ही विस्तृत है और उसमें और भी कई बातें है, परन्तु जहां तक हमारे आलोच्य विषय का संबंध है, कहा

जा सकता है कि इसमें कर्नट-स्त्रियों की बेबा वेश्यावृत्ति को चित्रित किया गया है , यद्यपि वे उसे घृणित घृणित और कमीन न समझकर "औरत का काम ही समझती है " ।

§17§ शेखर : एक जीवनी :

इलाचन्द्र जोशी के उपन्यास " प्रेत और छाया " में लेखक ने शिक्षित वेश्या की समस्या को उठाया है । "प्रेत और छाया" की मंजरी समाज में उठने वाली एक नयी समस्या के प्रति हमारा ध्यान आकृष्ठ करती है । मंजरी अर्थाभाव तथा मां की बीमारी के कारण इस व्यवसाय में आने पर विवश थी , किन्तु अज्ञेय कृत " शेखरः एक जीवनी " की मणिका के सामने इस प्रकार की कोई विवशता नहीं है । मणिका न तो अर्थाभाव से ग्रस्त है , न ही उसके सामने इस प्रकार की कोई विवशता जो उसे वेश्यावृत्ति के लिए प्रेरित करे । फिर भीअनैतिक यौन-संबंधों में वह विशेष रूप से रूचि लेती है । अपने चारों ओर युवकों को मंडराते देख वह प्रसन्न होती है और उसीमें अपने जीवन की सार्थकता मानती है । इस प्रकार मणिका एक पुंश्चली § Vamp § नारी है । इसके चित्रण के द्वारा लेखक कदाचित् वेश्यावृत्ति के नैतिक पक्ष पर जोर देना चाहते हैं ।

मणिका यद्यपि एक आनुषंगिक चरित्र है और लेखक ने उपन्यास में उसका समावेश शेखर के चरित्र के विकास की दृष्ट दृष्टि से ही किया है , तथापि एक हद तक वह प्रतिनिधि चरित्र है । वह उस उच्छृंखल और अनैतिक मनोवृत्ति का प्रतिनिधि चरित्र है , जो पाश्चात्य जीवन के वैभव-विलास की चकाचौंध में अपना विवेक खो बैठते हैं । इस प्रकार की महिलाएं पार्थिव भोग को न केवल अनावश्यक महत्व देती है , बल्कि उसमें स्वयं को गौरवान्वित भी समझती हैं । लेखक ने मणिका के चरित्र द्वारा कदाचित् आधुनिक सभ्यता की एक विषम समस्या को प्रस्तुत किया है । इस अनैतिकता में भी मणिको को एक प्रकार की विशिष्टता नज़र आती है , तभी तो वह शेखर से कहती है —" आई कलेक्ट मैन §

मैं तो पुरुषों का संग्रह करती हूं । कैसे-कैसे अजीब नमूने होते हैं — लेकिन एकाएक उसका स्वर अब और थकान से भर गया था — "चमड़ी के नीचे सब एक-से । असभ्य , असंस्कृत , विषय-लोलुप पशु । यह सुनकर शेखर के मन ने जोड़ा — " चमड़ी के नीचे सब एक-से — सब पुरुष , सब स्त्रियां — पुरुष और स्त्री , स्त्री और पुरुष । "120

आधुनिक युग में , विशेषतः यूरोप-अमरिका में , "सेक्स" को एक स्वाभाविक आवश्यकता के रूप में लिया जाता है ; बल्कि कहीं-कहीं "सेक्स" को ही प्रेम माना जाता है । "एन ए.बी.झेड आफ लव " में "सेक्स" की ही बात की गई है । पहले जहां सेक्स की संतुष्टि के लिए "विवाह" को आवश्यक माना जाता था , और विवाहेतर सेक्स संबंधों को अवांछित और अनैतिक करार दिया जाता था , वहां आधुनिक सभ्यता के अन्तर्गत , समाज के एक निश्चित वर्ग के स्त्री और पुरुष , सेक्स के लिए विवाह को आवश्यक मानते नहीं हैं , न ही वे इस प्रकार के संबंधों को पाप और अनैतिक मानते हैं । इसको लेकर उनके मन में कोई अपराध-बोध की भावना भी नहीं होती । लेखक ने मणिका का चित्रण एक ऐसी स्त्री के रूप में किया है । वह स्वतंत्र और उच्छृंखल प्रेम में मानती है । एक स्थान पर वह शेखर से कहती भी है — " शेखर , मैंने सदा तुम्हें प्यार किया है । पाप मैंने कभी नहीं किया । "121

समाज के नैतिक मानदण्डों के अनुसार तो ऐसी स्त्री को "पुंश्चली" या कुलटा ही करार दिया जायेगा । सामान्यतया वेश्या की परिभाषा में वह आ सकती है , फर्क इतना है कि वेश्या अपने देह का सौदा किसी आर्थिक विवशता के तहत करती है , जबकि यहां इस प्रकार की कोई विवशता नहीं है । मणिका को तरह-तरह के , नये-नये पुरुषों के साथ यौन-संबंध जोड़ने में एक प्रकार के आनंद का अनुभव होता है । पहले पुरुष शिकार करता था , उसमें आनंद और गर्व का अनुभव करता था , अब स्त्री यह सब करने लगी है । पहले पुरुष

स्त्री को भोगता था , अब स्त्री पुरुष को भोग रही है । निर्मल वर्मा के उपन्यास "वे दिन " की नायिका रायना एक तलाकयाफ्ता औरत है और जब-जब विकेण्ड में या लम्बी छुट्टियों में किसी दूसरे देश में जाती है, तब अपनी पसंद के किसी युवक से प्रेम करती है । इस संदर्भ में वह नैतिकता-अनैतिकता के प्रश्न को बीच में नहीं लाती । हाँ , इस बात का वह ध्यान रखती है कि उसके पार्टनर को किसी प्रकार का पछतावा नहीं होना चाहिए । इस प्रकार वह शारीरिक और मानसिक दृष्टि से स्वस्थ ऐसे किसी भी अपने मन-माफिक युवक से "सेक्स" मानती है । बिना पुरुष के वह अधिक दिन नहीं रह सकती । उसे भी वह एक प्रकार की भूख ही मानती है । परन्तु रायना ऐसी क्यों है उसका कारण भी वह बताती है । विश्वयुद्ध की विभीषिका ने उनका सबकुछ छिन्न-भिन्न कर दिया है । युद्ध के बाद की शान्ति ने सबकुछ खत्म कर दिया है । एक स्थान पर वह कहती है — "लेकिन कुछ चीजें हैं जो लड़ाई के बाद मर जाती हैं ... शान्ति के दिनों में ... वे घरेलू जिन्दगी में खप नहीं पाते । ... मैं किसी काबिल नहीं रह गयी हूँ ... नाट इवन फार लव । पीस किल्ड इट ..."[122] रायना और रायना जैसी अनेक स्त्रियाँ उस प्रकार का अभि-शप्त जीवन जीने के लिए बाध्य नहीं है , किन्तु "शेखर : एक जीवनी" की मणिका के लिए उस प्रकार की कोई बाध्यता नहीं है ।

निष्कर्ष :

अध्याय के समग्रावलोकन से हम निम्नलिखित निष्कर्ष पर सहजतया पहुँच सकते हैं —

(1) प्रस्तुत अध्याय में वेश्या-जीवन से सम्बद्ध सत्रह उपन्यासों को लिया गया है — परीक्षागुरु (लाला श्रीनिवासदास) ; आदर्श हिन्दू (मेहता लज्जाराम शर्मा) ; स्वर्गीय कुसुम (किशोरीलाल गोस्वामी) ; माँ (विश्वम्भरनाथ शर्मा "कौशिक) ; अँधेरी गली का मकान (जानकीप्रसाद शर्मा) ; सेवासदन (प्रेमचंद) ; बुधुआ

की बेटी § पाँडेय बेचन शर्मा "उग्र" § ; जनानी सवारियाँ , चम्पाकली , हिज हाईनेस , मयखाना , तीन इक्के § ऋषभचरण जैन § ; प्रेत और छाया , पर्दे की रानी § इलाचन्द्र जोशी § ; घरोंदे , कब तक पुकारूं § डा. रांगेय राघव § ; शेखर : एक जीवनी § अज्ञेय § आदि-आदि ।

§2§ प्रारंभिक उपन्यास , जैसे कि परीक्षा गुरु , आदर्श हिन्दू , स्वर्गीय कुसुम आदि में वेश्या का चित्रण एक सामाजिक बुराई के रूप में किया गया है । "आदर्श हिन्दू" में वेश्या की उपयोगिता इस तरह सिद्ध हुई है कि उनके अस्तित्व के कारण हिन्दू नारियों के सतीत्व की रक्षा होती है ।

§3§ स्वर्गीय कुसुम" में देवदासी वेश्या का चित्रण हिन्दी उपन्यास में पहली बार हुआ है , जिसे हम धार्मिक वेश्या कह सकते हैं ।

§4§ इन उपन्यासों के आधार पर वेश्यावृत्ति की समस्या के मूल कारणों की पड़ताल हो सकती है । इनमें प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं —1. अनमेल विवाह , दहेज-प्रथा , पति-परिवार या समाज द्वारा उपेक्षा और उत्पीड़न ; 2. अशिक्षा , आर्थिक परतंत्रता अथवा जीविका का प्रश्न ;3. पिता या बड़े भाई के अभाव में लड़की पर आर्थिक बोझ का पड़ना , घर में किसीकी असाध्य बीमारी ; 4. नारी की सच्चरित्रता पर पुरुष का अविश्वास ; 5. पुरुष की काम-लोलुपता ; 6. दलालों और कुटनियों का कुचक्र ; 6. नारी मन की दुर्बलता ; 7. परंपरागत विवशता तथा आसपास का वातावरण आदि-आदि ।

§5§ छल-छद्म , झूठ , धोखाधड़ी , स्वार्थपरता , अर्थलोलुपता आदि दुर्गुण जहाँ वेश्याओं में पाये जाते हैं ; वहाँ कभी-कभी वफादारी और ईमानदारी की मिसाल भी मिल जाती है । जहाँ कुलवधू समझी जानेवाली स्त्रियाँ कई बार ×××× आंतरिक या मानसिक दृष्टया हरजायी

होती हैं, वहाँ कई बार सती-साध्वी स्त्रियां भी वेश्याओं के रूप में पाई जाती हैं। "चम्पाकली" इसकी मिसाल है।

{6} ऋषभचरण जैन तथा उग्र आदि उपन्यासकारों ने समाज के नग्न यथार्थ को चित्रित किया है, अतः उनके उपन्यासों में हमें वेश्या-जीवन का चित्रण विशेषतया मिलता है।

{7} प्रेमचंद के "सेवासदन" उपन्यास में हमें गौनहारिन वेश्या का रूप मिलता है। प्रेमचंद ने एक समाजशास्त्री की भाँति वेश्या-समस्या पर विचार किया है और वेश्याओं की उत्पत्ति के कारणों की मीमांसा प्रस्तुत की है।

{8} इलाचन्द्र जोशी के उपन्यास "प्रेत और छाया" में नायक का चरित्र वेश्यागामी बताया है, अतः उसके ब्याज से उपन्यास में अनेक वेश्याओं का चित्रण मिलता है। "पर्दे की रानी" की नायिका वेश्या नहीं, किन्तु वेश्यापुत्री है। वेश्यावृत्ति का मनोविश्लेषणात्मक चित्रण हमें जोशीजी में मिलता है।

{9} इधर शिक्षित वेश्याओं की समस्या एक नये रूप में उभर रही है। "प्रेत और छाया" तथा "शेखर : एक जीवनी" में उसका विश्लेषणात्मक चित्रण हमें प्राप्त होता है।

{10} डा. रांगेय राघव कृत "कब तक पुकारूं" में जाति-गत वेश्यावृत्ति का चित्रण मिलता है। कर्नट जाति की स्त्रियों को प्रायः वेश्यावृत्ति का सहारा लेना ही पड़ता है और उनमें इस बात को लेकर कोई अपराध-बोध की भावना भी नहीं मिलती। "सतीत्व" वहाँ धन-मूल्य नहीं, बल्कि अर्थ-मूल्य माना जाता है।

{11} अधिकांश उपन्यासकारों ने वेश्याओं का चित्रण सहानु-भूति और संवेदना के साथ किया है।

======XXXXX =======

: सन्दर्भानुक्रम :

§1§ द नोवेल एण्ड द पिपल : राल्फ फोक्स : पृ. 83 ।

§2§ हिन्दी उपन्यास पर पाश्चात्य प्रभाव : डा. भारतभूषण अग्रवाल : पृ. 23 ।

§3§ नवलकथा : स्वरूप " : डा. प्रवीण दरजी : पृ. 36 ।

§4§ परीक्षागुरु : लाला श्रीनिवासदास : भूमिका से ।

§5§ वही : भूमिका से । §6§ वही : पृ. 283 283 ।

§7§ सलाम आखिरी : मधु कांकरिया : पृ. 97 ।

§8§ आदर्श हिन्दू : मेहता लज्जाराम शर्मा : पृ. 218-219 ।

§9§ वही : पृ. 223-224 । §10§ सलाम आखिरी : पृ. 9 ।

§11§ आदर्श हिन्दू : पृ. 82 ।

§12§ हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : पृ. 477 ।

§13§ लेख : "प्रेमचंद-पूर्व हिन्दी उपन्यास " : हिन्दी उपन्यास : सं. डा. सुषमा प्रियदर्शिनी : पृ. 138 ।

§14§ "हिन्दी उपन्यास साहित्य की विकास परंपरा में साठोत्तरी उपन्यास " : डा. पारूकान्त देसाई : पृ. 69-70 ।

§15§ सी : रिपोर्ट आफ द कमिटी आन मोरल एण्ड सोशल हाइजिन : पृ. 6 ।

§16§ स्वर्गीय कुसुम : किशोरीलाल गोस्वामी : पृ. 137 ।

§17§ से §20§ : वही : पृ. क्रमशः 139, 167, 118, 118 ।

§21§ " हिन्दी उपन्यास में नारी चित्रण : " डा. बिन्दु अग्रवाल : पृ. 69 ।

§22§ काव्य के रूप : डा. गुलाबराय : पृ. 182 ।

§23§ [illegible] : द्रष्टव्य : " हिन्दी उपन्यास साहित्य की विकास परंपरा में साठोत्तरी उपन्यास " : पृ. 159 ।

§24§ माँ : विश्वम्भरनाथ शर्मा "कौशिक " : पृ. 130 ।

§25§ माँ : विश्वम्भरनाथ शर्मा "कौशिक" : पृ. 131 ।

§26§ और §27§ : वही : पृ. क्रमशः 303,313 ।

§28§ द्रष्टव्य : " अँधेरी गली का मकान " : जानकीप्रसाद शर्मा : भूमिका से ।

§29§ सेवासदन : प्रेमचंद : पृ. 5 ।

§30§ और §31§ : वही : पृ. क्रमशः 7,7 ।

§32§ सूखे सेमल के वृन्तों पर : डा. पारुकान्त देसाई : पृ. 72 ।

§33§ सेवासदन : पृ. 20 ।

§34§ से §36 § : वही : पृ. क्रमशः 25.25.34 ।

§37§ युगनिर्माता प्रेमचन्द : डा. पारुकान्त देसाई : पृ. 16 ।

§38§ सेवासदन : पृ. 192 ।

§39§ द्रष्टव्य : शोध-प्रबंध : " शैलेश मटियानी की कहानियों में नारी के विविध रूपों का चित्रण " : डा. श्रीमती सुषमा शर्मा : पृ. 86 ।

§40§ " हिन्दी उपन्यास : सामाजिक चेतना " : डा. कुंवरपाल सिंह : पृ. 38 ।

§41§ फालिन विमेन : डा. विद्याधर अग्निहोत्री : पृ. 8 ।

§42§ सेवासदन : पृ. 109-110 ।

§43§ और §44§ : वही : पृ. क्रमशः 113-114, 116 ।

§45§ प्रेमचंद की उपन्यास कला : डा. जनार्दन झा द्विज : पृ. 35 ।

§46§ " प्रेमचंद : व्यक्ति और साहित्यकार" : डा. मन्मथनाथ गुप्त : पृ. 166-167 ।

§47§ द्रष्टव्य : त्यागपत्र : जैनेन्द्र : पृ. 8 ।

§48§ " हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक ग्रन्थियों एवं समस्याओं का निरूपण : डा. मनीषा ठक्कर : पृ. 66 ।

§49§ द्रष्टव्य : सलाम आखिरी : मधु कांकरिया : पृ. 99 ।

§50§ द्रष्टव्य : संदर्भानुक्रम §48§ के अनुसार : पृ. 88-89 ।

§51§ जनानी सवारियाँ : ऋषभचरण जैन : मुखपृष्ठ पर दिए लेखकीय वक्तव्य से ।

§52§ द्रष्टव्य : वही : पृ. 23-32 ।

§53§ से §61§ : जनानी सवारियाँ : ऋषभचरण जैन : पृ. क्रमशः 36-37, 46, 48, 73, 89, 97, 98, 102, 105 ।

§62§ " ऋषभचरण जैन : व्यक्तित्व एवं कृतित्व " : डा. गीता आर्यदानी : शोध-प्रबंध : पृ. 188 ।

§63§ द्रष्टव्य : गुजरात समाचार : गुजराती दैनिक : दिनांक 28-2-07 से 6-2-07 ।

§64§ चम्पाकली : ऋषभचरण जैन : पृ. 29 ।

§65§ से §68§ : वही : पृ. क्रमशः 61, 30-31, 114, 77 ।

§69§ सलाम आखिरी : मधु कांकरिया : पृ. 97 ।

§70§ इरोटिक आर्ट आफ इण्डिया : फिलिप रासन : सी : प्लेट नं-2 ।

§71§ हिज हाईनेस : ऋषभचरण जैन : पृ. 59-60 ।

§72§ आँसू : जयशंकर प्रसाद : पृ. 14 § संस्करण - 1983 § ।

§73§ से §75§ : मयखाना : ऋषभचरण जैन : पृ. क्रमशः 6, 13-14, 14 ।

§76§ कलम कलम का सिपाही : अमृतराय : पृ. 25 ।

§77§ तीन इक्के : ऋषभचरण जैन : पृ. 25 ।

§78§ से §81§ : वही : पृ. क्रमशः 30, 31, 66-67, 96 ।

§82§ द्रष्टव्य : सलाम आखिरी : मधु कांकरिया : पृ. 30 ।

§83§ द्रष्टव्य : " हिन्दी उपन्यास साहित्य की विकास परंपरा में साठोत्तरी उपन्यास : डा. पारूकान्त देसाई : पृ. 160 ।

§84§ द्रष्टव्य : हिन्दी उपन्यास पर पाश्चात्य प्रभाव : डा. भारत-भूषण अग्रवाल : पृ. 105 ।

§85§ विवेचना : पृ. 123 ।

§86§ प्रेत और छाया : इलाचन्द्र जोशी : पृ. 9 ।

§87§ से §96§ : वही : पृ. क्रमशः 10, 330, 215, 293, 304, 303, 303, 365, 366, 401 ।

§97§ पर्दे की रानी : इलाचन्द्र जोशी : पृ. 97 ।

§98§से§104§ : वही : पृ. क्रमशः 54, 79, 128, 215, 183, 188, 215 ।

§105§ घरौंदे : रांगेय राघव : पृ. 293 ।

§106§ से §108§ : वही : पृ. 294, 295, 298 ।

§109§ अवसान : मन्मथनाथ गुप्त : पृ. 179 ।

§110§ कब तक पुकारूं : डा॰ रांगेय राघव : पृ. 16 ।

§111§ तुलनीय : " ए नोवेल इज़ द डायरेक्ट एण्ड पर्सनल इम्प्रेशन आफ लाइफ " : हेनरी जेइम्स : उद्धृत द्वारा - डा. पारूकान्त देसाई : समीक्षायण : पृ. 115 ।

§112§ कब तक पुकारूं : पृ. 378 ।

§113§ दलित चेतना से अनुप्राणित हिन्दी उपन्यास : डा. एन.एस. परमार : पृ॰ 55-56 ।

§114§ से §119§ : कब तक पुकारूं : पृ. क्रमशः 51, 48-48, 45, 45, 48, 28 ।

§120§ "शेखर : एक जीवनी " : अज्ञेय : पृ. 19 ।

§121§ वही : पृ. 242 ।

§122§ वे दिन : निर्मल वर्मा : पृ. 211 ।

§§§§§§§§§§§§§